गुरुदेव कहते हैं...

सागर से पूछिए, कितनी नदियों को स्वीकार करने के पश्चात् तुम और नदियों को स्वीकारने से इन्कार करोगे ?

आग से पूछिए, कितनी लकड़ियों को निगलने के पश्चात् तुम और अधिक लकड़ियों को निगलने हेतु तैयार नहीं होओगी ?

श्मशान से पूछिए, कितने शवों के अग्निसंस्कार के पश्चात् तुम और अधिक शवों के अग्निसंस्कार से साफ़ इन्कार कर दोगे ?

मन से पूछिए, इन्द्रियों के माध्यम से कितने विषयसुखों को भोगने के पश्चात् तुम निश्चित् तृप्ति की अनुभूति करोगे ?

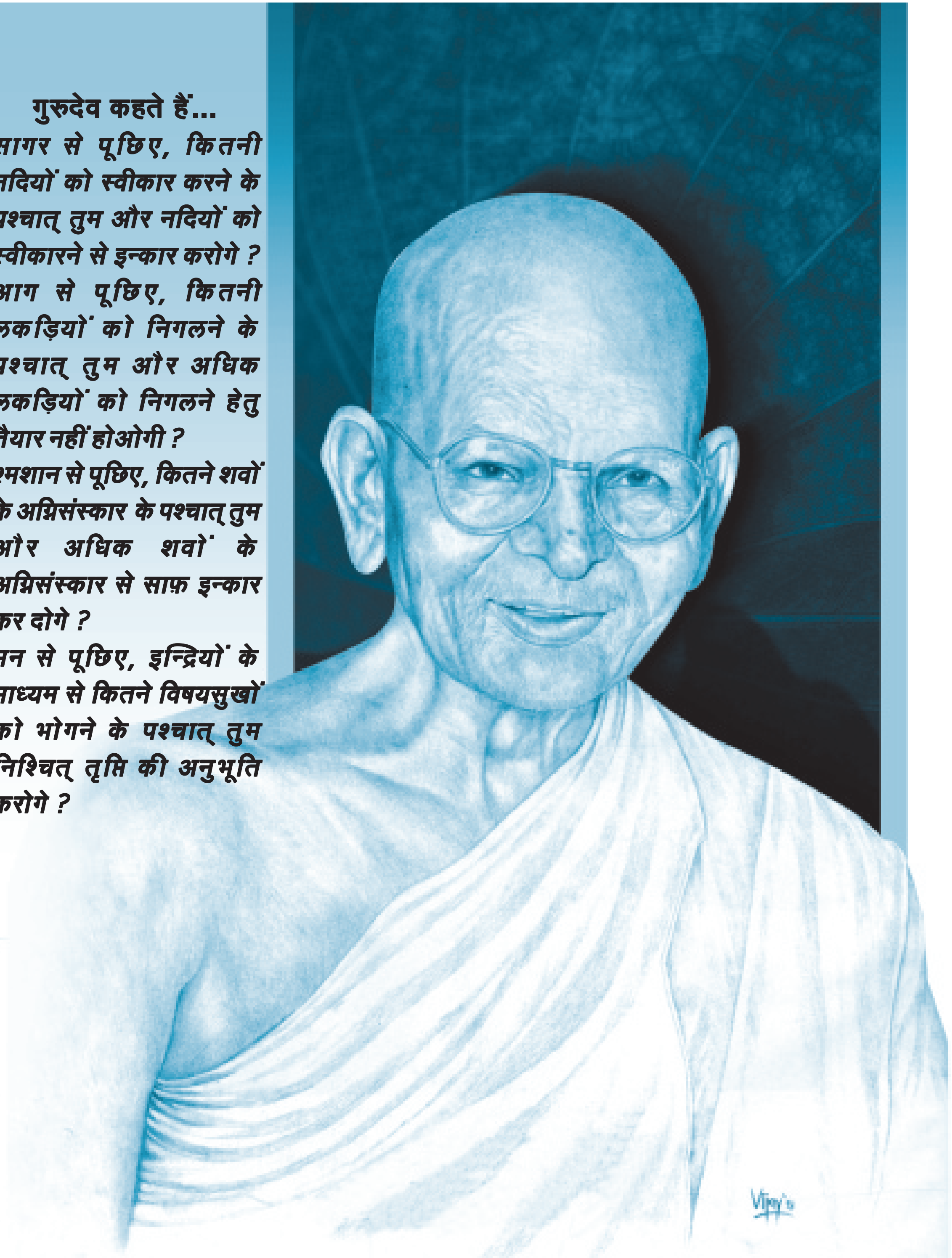

२५ वर्ष की युवावस्था में चारित्रस्वीकार। कंठ में झंकार। वाणी में मधुरता। आँखों में अमृत। प्रमाद से दुश्मनी और सद्गुणों से दोस्ती। बुद्धि में तीक्ष्णता और जीवन में सरलता। प्रभुभक्ति में एकाग्रता और गुरुभक्ति में तन्मयता। स्व के प्रति कठोरता और सर्वजीवों के प्रति कोमलता। साहित्यसर्जन में असंतुष्ट और उपकरणों के सम्यक् उपयोग में संतुष्ट।

गोचरी में निर्दोषता और व्यवहार में निश्छलता। जीवन में सादगी और स्वभाव में ताज़गी। जीव मात्र के प्रति वात्सल्यभाव और जड़ मात्र के प्रति विरक्तभाव। अप्रमत्तता के आग्रही और विचारशैली में निराग्रही। शक्ति कवित्व की और कला वक्तृत्व की ! स्तवनों में राग अद्भुत और प्रवचनों में वैराग्य भरपूर। निद्रा अल्प और तपस्या तीव्र ! विहार में थकान नहीं और अध्यापन में आराम नहीं।

जिनशासन के प्रति अनुराग तीव्र और दुर्गुणों के प्रति द्वेष तीव्र ! दृष्टि में निर्मलता और वृत्ति में पवित्रता ! प्रमादस्थानों के साथ समझौता नहीं और संघों में कहीं संघर्ष नहीं। सन्मार्गप्रवर्तक संयमियों के और सन्मार्गदर्शक युवाओं के।

गुरुदेव !

आम्रवृक्ष पर आम लगते हैं, चीकू और सेब नहीं ! आपके जीवनवृक्ष पर कौनसे सद्गुण प्रकट नहीं हुए थे यह प्रश्न है।

गुरुदेव कहते हैं...

परमात्मा के अस्तित्व के प्रति श्रद्धा रखने वाले मन को यदि परमात्मा की अचिन्त्यशक्तिसंपन्नता पर श्रद्धा नहीं है तो केवल अस्तित्व के प्रति मन की श्रद्धा आत्मा के लिए लाभदायी अथवा हितकारी सिद्ध हो यह संभावना नहीं के बराबर है।

संपत्ति के अस्तित्व के साथ संपत्ति की शक्ति पर भी यदि हमें श्रद्धा होती ही है तो परमात्मा के अस्तित्व के साथ परमात्मा की अचिन्त्यशक्तिसंपन्नता पर हमें श्रद्धा क्यों नहीं ?

रुचि वर्धमानतप की ओली में और सफलता कर्मों की होली में। स्वाध्याय में न देखने को मिले व्यग्रता और वाणी में न दिखाई दे उग्रता। दोषों की उपेक्षा नहीं और दोषित की अवहेलना नहीं। बहिर्मुखता में रुचि नहीं और अंतर्मुखता में निरसता नहीं। वात्सल्य में सागरतुल्य और संकल्प में मेरुतुल्य। आँखें झुकी हुई और मस्तक उन्नत !

सफलता वंदनीय, पर सरलता अनुकरणीय। वय से वृद्ध, परन्तु काया से युवा। दोषों के विषय में दृष्टि अत्यन्त गहरी और गुणों के विषय में दृष्टि सिद्धशिला पर। दिन के उजाले में शासन के कार्यों में व्यस्त और रात्रि के अंधकार में जिनवचनों के लेखन में मग्न। गोचरी में निर्दोषता के आग्रही और संयमचर्या में अप्रमत्तता के आग्रही।

विषयों में ललचाने की बात नहीं और कषायों में उलझने की बात नहीं। मन अत्यन्त स्पष्ट और अंत:करण बिल्कुल स्वच्छ। हृदय पवित्र और चित्त प्रसन्न। परलोक प्रतिपल दृष्टि में और परमपद हर क्षण स्मृति में। औरों के सत्कार्यों की प्रशंसा में कृपणता नहीं और स्वयं के प्रमाद के साथ कभी कोई समझौता नहीं।

गुरुदेव !

इन तमाम गुणों के धारक आप और फिर भी आपको इनसे कोई संतोष नहीं ? आप हर पल अधिक से अधिक गुणों के प्रादुर्भाव हेतु तरसते रहे ! तड़पते रहे ! आप कितने बड़े लोभी ?

गुरूदेव कहते हैं...

उपकारियों का द्रोह, पूज्य पुरुषों की निन्दा और धर्म की बुराई–ये, हिंसा–दुराचार आदि पापों से भी अति भयंकर पाप हैं।

कारण ? हिंसा–दुराचारादि पापों में संभव है कि हृदय कोमल हो, अति संक्लिष्ट और निष्ठुर न भी हो, परन्तु उपकारियों के द्रोह, निन्दा आदि पापों में तो हृदय के भाव निश्चित् रुप से महासंक्लिष्ट एवं निष्ठुर होते हैं। और इसीलिए उसका दीर्घकालीन ग़लत प्रभाव होता ही है। यह दुर्गतियों के भवों में जीव को भटका देता है।

१९६४ का वर्ष था। स्थल था अचलगढ़। समय था ग़र्मी की छुट्टियों का। आयोजन था एक माह के युवा शिविर का। मैं उपस्थित था वहाँ एक शिविरार्थी के रुप में।

जीवन में पहली बार मैंने आपके दर्शन किये। गुरुदेव ! सच कहूँ ? आपकी तपोमयी दुबली–पतली काया को देखकर मेरे मन में विचार आया था– ''अरे ! यह साधु हमें पढ़ायेगा या हमें यहाँ से भाग जाने के लिए मजबूर कर देगा ?''

परन्तु...आप प्रवचन पीठिका पर बिराजमान हुए। हम सब शिविरार्थी युवा आपश्री के सम्मुख बैठे। आपके कण्ठ से उत्फुल्ल वाणी फूटी, मालकौंश राग में आपने नवकारमंत्र का गान किया जो अंतर की गहराइयों में समा गया।

उस समय आपश्री की जो मुखमुद्रा थी वह आज भी साक्षात मेरी नज़रों के समक्ष है। आपश्री के दोनों हाथ जुड़े हुए थे। आँखें लगभग बंद थीं और कण्ठ नवकार के गान में रत था। बस, आपश्री के उस मंगलाचरण के श्रवणमात्र से मैं भीतर तक हिल गया। भीतर ही भीतर मुझे यह महसूस होने लगा कि यहाँ कुछ है। आपके पास निश्चित ही कुछ है–कुछ अलग ही वैभव।

गुरुदेव !

मुझे कल्पना भी नहीं थी कि मुझ जैसे अनगढ़ पत्थर पर एक सुविख्यात शिल्पी की दृष्टि पड़ेगी। प्रश्न केवल समय का ही था। छेनी की एक ही चोट पड़ी और परिमार्जन प्रारंभ....।

गुरुदेव कहते हैं...

केवल स्वयं की अनुकूलता को दृष्टिगत रखना और दूसरों की प्रतिकूलता की परवाह न करना, यह ज़हरीली दृष्टि है। मूल में दृष्टि यदि मलिन है-ज़हरीली है तो वह कषायों का दृढ़ बंधन हैऔर इसीलिए हम अन्य किसी भी धर्म अथवा तप के लिए कष्ट करें, गुणस्थानक पर अग्रसर नहीं हो सकते।

स्थल पिंडवाड़ा। समय था दिपावली-अवकाश का। मात्र २५-३० युवा वहाँ उपस्थित थे। उनमें मैं भी एक था। आपश्री हम सभी को प्रतिदिन ४-४ प्रवचन देते थे।

इस दौरान एक बार रात में आपश्री ने मुझे बुलाया और अपने पास बिठाया।

''इस संसार में कोई सार नहीं है।''

''पर मैं किसी भी तरह दु:खी नहीं हूँ।''

गुरुदेव! मेरी इस तुच्छ बात के जवाब में आपश्री ने चांदनी के सौम्य प्रकाश में मुझे जो दृष्टान्त तर्क सहित दिये और संसार की असारता तथा संयमजीवन की सारभूतता समझाई उन्हें सुनकर मैं स्तब्ध रह गया था।

''मुझे संयम का मार्ग अपनाना है।''

''निर्णय पक्का ?''

''हाँ''

और उन मंगल क्षणों में आपश्री ने मेरे सर पर आशीर्वाद की वर्षा कर दी थी, और मैंने आपश्री के समक्ष जीवनभर के लिए ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार कर लिया था। आपश्री के समक्ष मैंने अत्यन्त आनन्द और निश्चिन्तता की अनुभूति की थी।

गुरुदेव!

जिस कुशलता से आपने मेरा ''ऑपरेशन'' कर दिया था वह वास्तव में मेरे जीवन का श्रेष्ठतम चमत्कार था।

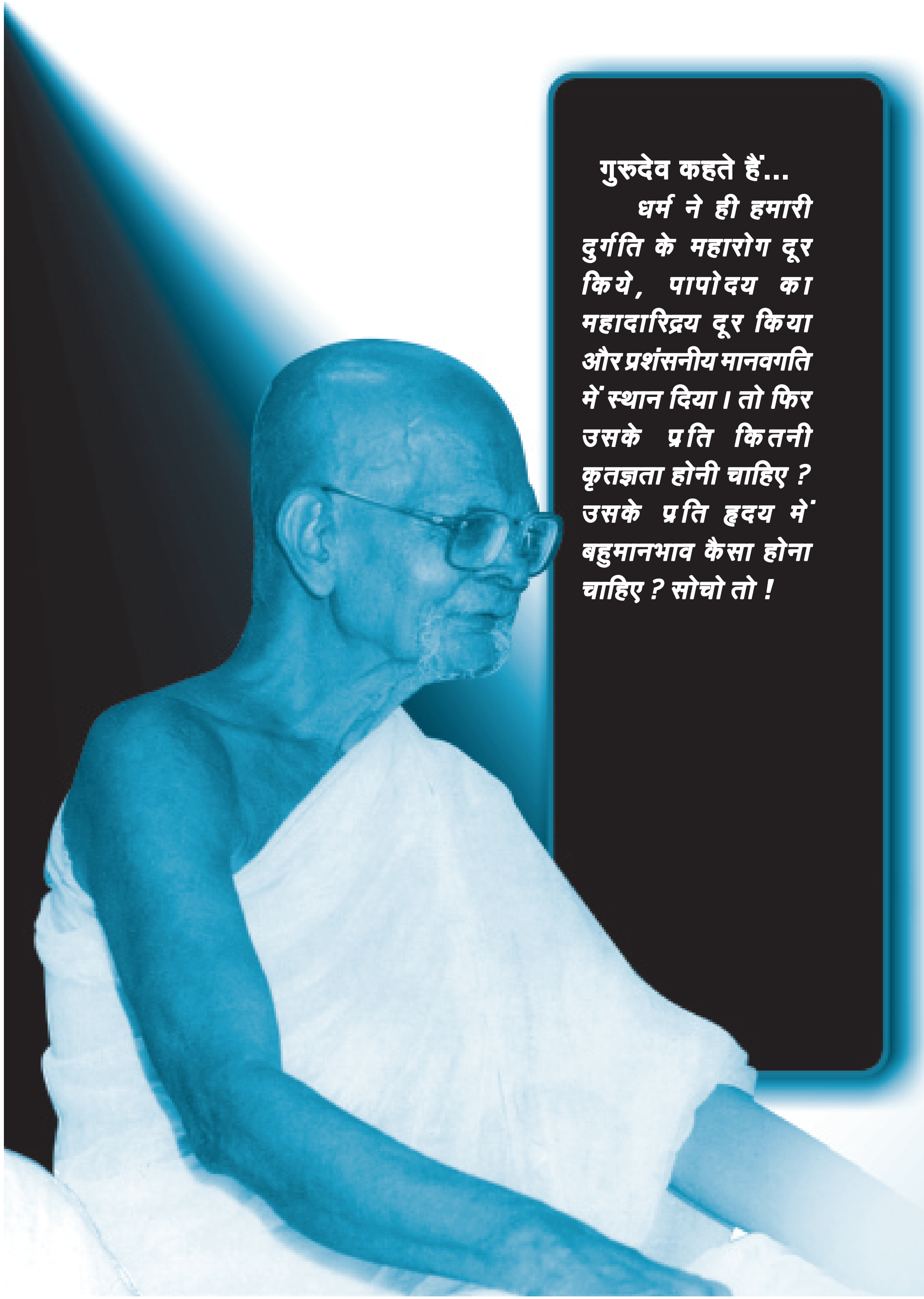

गुरुदेव कहते हैं...

धर्म ने ही हमारी दुर्गति के महारोग दूर किये, पापोदय का महादारिद्रय दूर किया और प्रशंसनीय मानवगति में स्थान दिया। तो फिर उसके प्रति कितनी कृतज्ञता होनी चाहिए ? उसके प्रति हृदय में बहुमानभाव कैसा होना चाहिए ? सोचो तो !

मुमुक्षु अवस्था से ही मैं पढ़ाई में कैसा कमज़ोर था यह तो आप जानते ही हैं ना ? किसी भी तरह मैं ''वंदित्तु'' सीखने के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि उसमें ५० श्लोक थे। पर, आपने ग़जब का नुस्खा अपनाया। मुझे बुलाकर इतना ही कहा, ''तुम्हें पहले दिन पहला श्लोक याद करना है और दूसरे दिन पचासवाँ श्लोक ! तीसरे दिन दूसरा श्लोक याद करना है और चौथे दिन उनपचासवाँ श्लोक ! श्लोक की रेल में एक डिब्बा आगे से जोड़ते जाना और एक डिब्बा पीछे से जोड़ते जाना। यह करते करते तुम्हारा ''वंदित्तु'' पूरा हो जायेगा।

''पर वंदित्तु बोलने का मौका आयेगा तब क्या श्लोक में गड़बड़ नहीं होगी ?''

''तुम मन के गणित को नहीं जानते। वह श्लोकों को उसके क्रम में ही रचता जायेगा। तुम एक बार इस तरह याद कर लो, फिर देखो कैसा चमत्कार होता है !''

और गुरुदेव, कमाल हो गया। ५० वें दिन मुझे संपूर्ण वंदित्तु याद हो गया और उसी दिन शाम को प्रतिक्रमण में एक भी गलती किये बिना मैं पूरा वंदित्तु बोल भी गया। मेरे इस पराक्रम (?) से मैं ख़ुद कैसा अचंभित था, आनंदित था ?

गुरुदेव !

अच्छे-अच्छे मानसशास्त्रियों को भी आपके सामने घुटने टेक देने का मन हो जाए - ऐसी अद्‌भुत युक्ति-प्रयुक्तियाँ थीं आपके पास मन को समझने की-समझाने की !

कमाल ! कमाल !!

गुरुदेव कहते हैं...

अभयदान सभी जीवों को दिया जाता है। अनुकंपादान दुखियों को दिया जाता है। परन्तु, धर्मोपग्रह–धर्मोपकारी दान धर्म को पुष्ट करने वाला दान है, अत: वह निश्चित रुप से धर्मनिष्ठ महात्माओं को ही दिया जाता है।

''तुम्हें सम्मेदशिखर नहीं जाना है।''

मेरे हाथों में ''टूर'' में सम्मेदशिखर यात्रा पर जाने का टिकट था और गुरुदेव, आपने मुझे यह आज्ञा दे दी। मैंने सोचा, ''दीक्षा के बाद तो सम्मेदशिखर कैसे जा पाऊँगा ? और यहाँ तो गुरुदेव मुमुक्षु अवस्था में भी सम्मेदशिखर जाने के लिए मना कर रहे हैं। चलो, टिकट वापस कर देंगे।''

मुश्किल से दो महीने बीते होंगे और गुरुदेव, आपने मुझे बुलाकर कहा, ''एक मुमुक्षु के साथ तुम्हें सम्मेदशिखर की यात्रा पर पन्द्रह दिन के बाद जाना है। तैयारी कर लेना। तुम्हारा टिकट आ गया है।''

और गुरुदेव, उस दिन शाम को आपने मुझे बुलाकर इतना ही कहा, ''देखो, टूर में यात्रा पर जाने से मैंने तुम्हें इसलिए मना किया था कि टूर में बहनें ट्रेन के डिब्बे में ही वस्त्र बदलती हैं। तुम युवा हो। आत्मा पर अनगिनत कुसंस्कार लदे हुए हैं और आत्मा निमित्तवासी है। एकाध ग़लत दृश्य के दर्शन से चारित्र अपनाने की तुम्हारी भावना खण्डित हो जाए तो होगा क्या ? बस, इस वजह से मैंने तुम्हें यात्रा पर जाने से रोका था। पर इस बार तो तुम दो मुमुक्षुओं को ही साथ जाना है, इसलिए इस भय को कोई स्थान नहीं है।

गुरुदेव !

आत्मा के भावप्राणों को सुरक्षित कर देने वाली आपकी इस निर्मल प्रज्ञा को झुक–झुककर वंदना करने के अलावा मैं और कुछ भी नहीं कर सकता।

गुरुदेव कहते हैं...

दूसरों की ग़लती न देखकर उसके संयोगों पर विचार करना चाहिए और स्वयं के कर्मों को दृष्टिगत रखकर उन्हें ही जिम्मेदार मानना चाहिए तथा जहाँ स्वयं की ग़लती दिखाई दे वहाँ उसके परिमार्जन के लिए अधिक-से-अधिक शुभ कार्य करने की तमन्ना रखनी चाहिए।

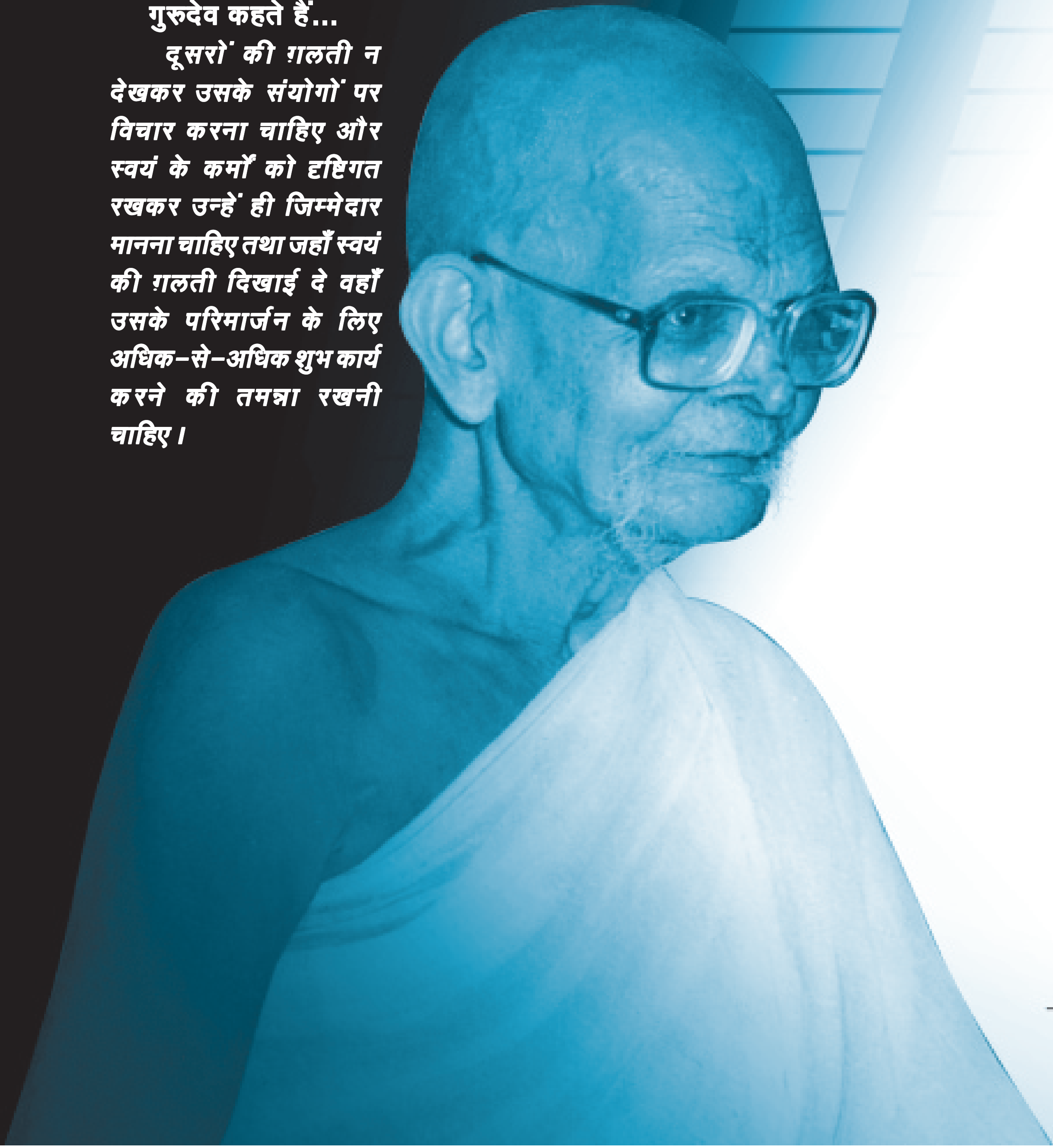

संयमजीवन का वह प्रथम चातुर्मास ही था। स्थान था मलाड़-देवकरण मूलजी जैन उपाश्रय। दिन था चतुर्दशी। संध्यासमय प्रतिक्रमण करने के बाद संथारा पोरिसि की विधि के बाद मैं सो गया था।

अचानक कोई मुझे जैसे उठा रहा हो ऐसा मुझे महसूस हुआ। मैंने आँखें खोलीं। देखा तो सामने गुरुदेव आप ही खड़े थे। मैं तत्काल खड़ा हो गया।

''रात्रि स्वाध्याय किया ?''

''नहीं।''

''क्यों ?''

''आज उपवास भी है और सिर में दर्द भी।''

''तो क्या हुआ ?''

''स्वाध्याय करने की इच्छा नहीं हो रही गुरुदेव।''

''मन की इच्छा के अनुसार चलना चाहिए अथवा प्रभु की इच्छा के अनुसार ? सुनो, रात्रि-स्वाध्याय तो साधुता की परीक्षा है। गृहस्थ हज़ारों मुसीबतों के बीच भी यदि नौकरी पर जाता ही है तो क्या हमें मुसीबतों में आराधनाओं को छोड़ देना चाहिए ? आसन पर बैठ जाओ और एक घण्टा स्वाध्याय करो, फिर चाहो तो सो जाना।''

रोते रोते भी आपने मुझसे स्वाध्याय करवाया ही !

गुरुदेव !

आपकी इस कठोरता के केन्द्र में करुणा ही थी यह समझ उन दिनों मुझमें होती तो सच उस समय मेरा चित्त आपके प्रति दुर्भाव से ग्रस्त नहीं हुआ होता।

गुरुदेव कहते हैं...

बाह्य अन्याय से तो अंतर के काम-क्रोध-लोभ, राग-द्वेष, मान-मद-माया जैसे घोर अन्यायों का सामना करना उचित है। यह आंतरशत्रुओं के साथ ही युद्ध करने जैसा है। जवाब दो- अन्याय के विरुद्ध लड़ रहे हो या आंतरशत्रुओं के विरुद्ध ?

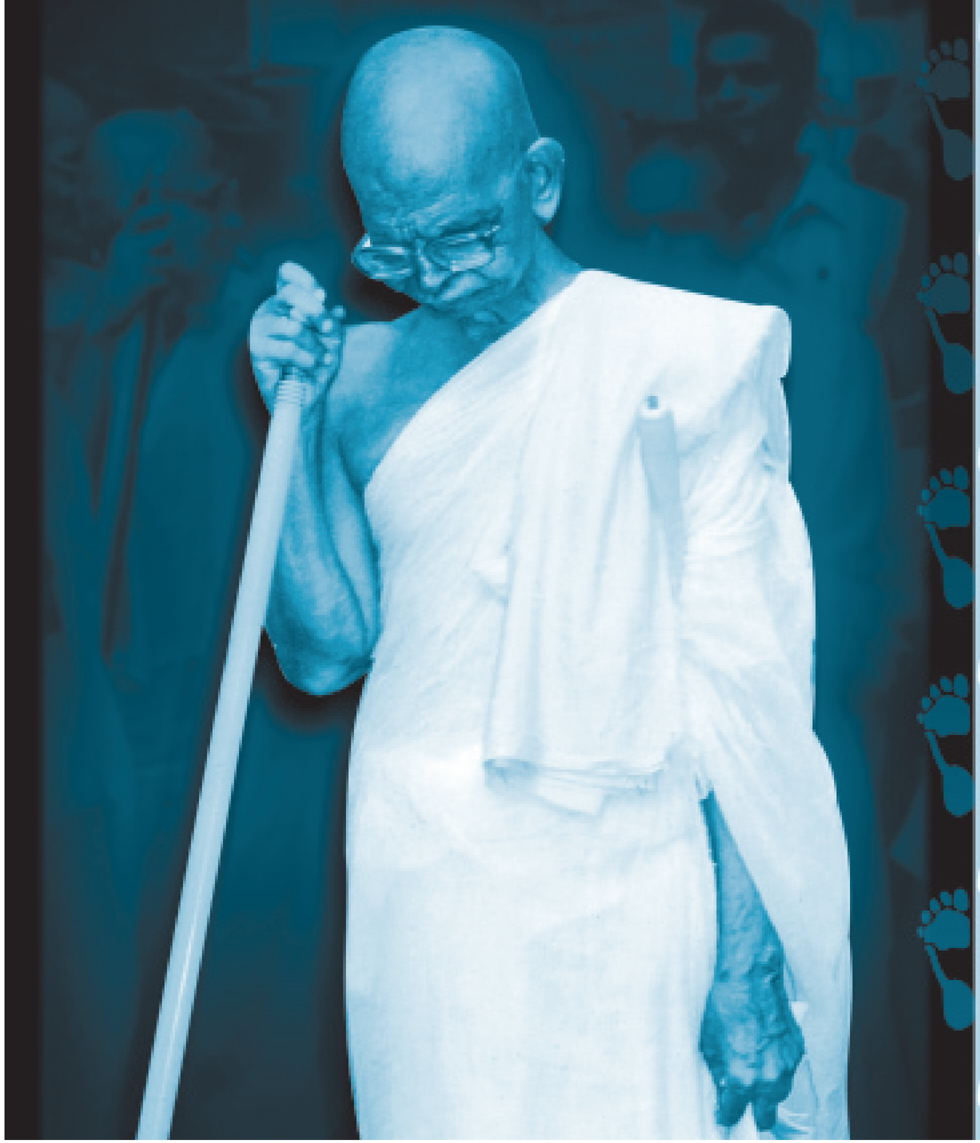

सं. २०२३ का वर्ष। प्रथम चातुर्मास मलाड़। संघ में हुई आराधनाओं की अनुमोदना हेतु संघ द्वारा आयोजित था अष्टाह्निका महोत्सव। बीच में आयोजन था रथयात्रा के वरघोड़े का।

गुरुदेव ! संघ के अग्रणियों ने आपको रथयात्रा में पधारने हेतु विनती की और हम सब आपके साथ रथयात्रा में सम्मिलित होने के लिए तैयारी करने लगे।

अचानक आपकी नज़र मुझ पर पड़ी।

''रत्नसुंदर, यहाँ आओ।''

मैं डर गया। ''ज़रुर मुझसे कोई ग़लती हुई होगी।''

गुरुदेव, मैं डरते डरते आपके पास आया और आपने श्रावकों की उपस्थिति में ही मेरी जमकर धुलाई कर दी !

''कमली इस तरह अप-टु-डेट ओढ़नी चाहिए ? किसको दिखाना है तुम्हें ? तुम्हें पता है कि दशवैकालिक सूत्र में स्त्रीसंसर्ग और वेष-विभूषा को तालपुट विष की उपमा दी गई है ?

तुमने जिस तरह कमली ओढ़ी है उसका समावेश विभूषा में होता है। संयम यदि अच्छी तरह पालना है तो वस्त्र व्यवस्थित ज़रुर पहनो, पर अप-टु-डेट पहनना बंद करो।''

गुरुदेव !

हमारे जीवन को पतन की ओर जाने से रोकने के लिए आपने हमारे मन को तोड़ने का जो अभियान चलाया था उस अभियान ने ही हमें आज संयमजीवन में स्वस्थ, मस्त और पवित्र बनाये रखा है।

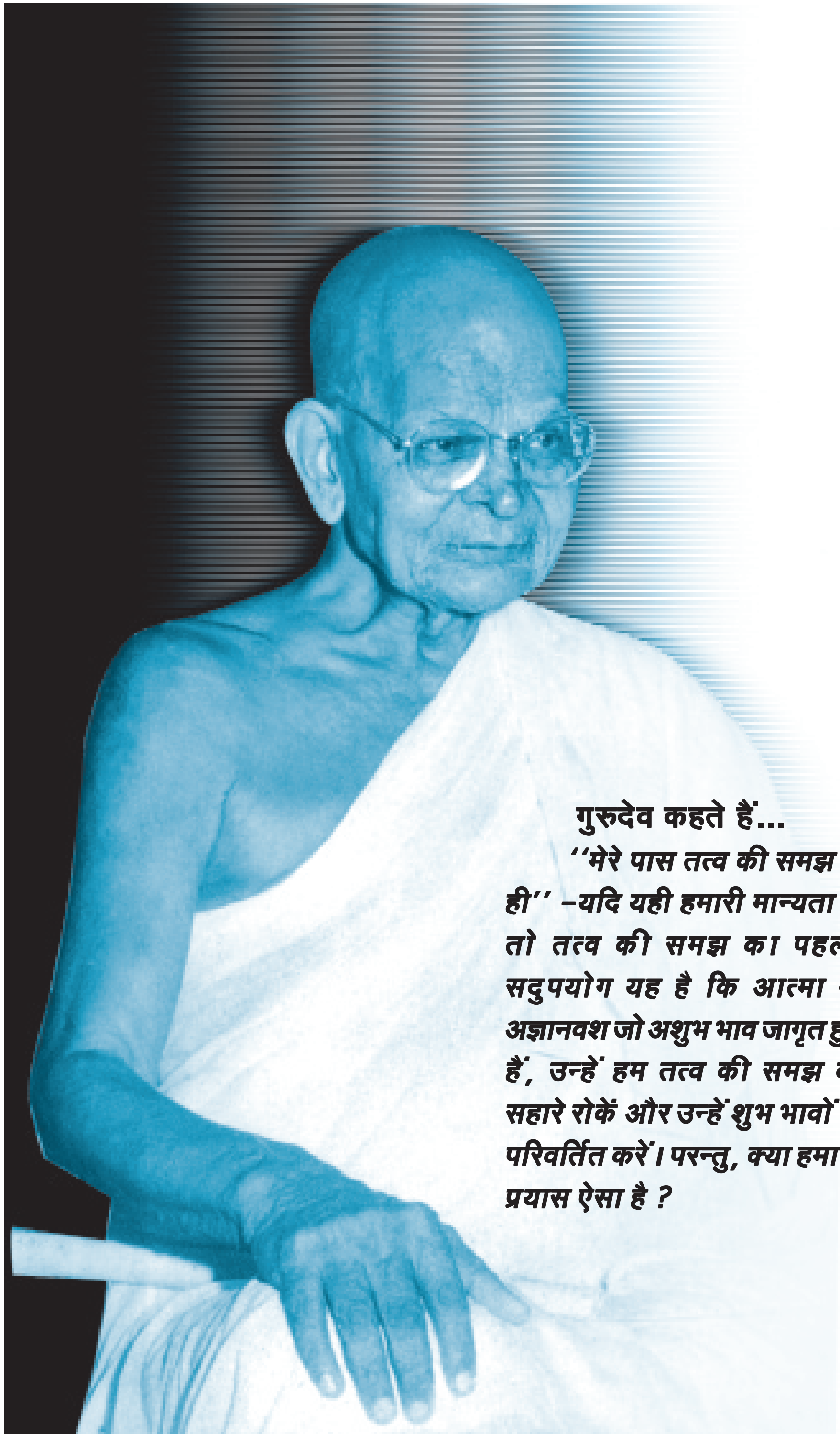

गुरुदेव कहते हैं...

''मेरे पास तत्व की समझ है ही'' –यदि यही हमारी मान्यता है तो तत्व की समझ का पहला सदुपयोग यह है कि आत्मा में अज्ञानवश जो अशुभ भाव जागृत हुए हैं, उन्हें हम तत्व की समझ के सहारे रोकें और उन्हें शुभ भावों में परिवर्तित करें। परन्तु, क्या हमारा प्रयास ऐसा है ?

ज्ञानपंचमी के उपवास निमित्त आज सभी को पारने थे। अलबत्ता, उपवास के पारने एकासना करने वाले मुनिभगवंत भी थे, परन्तु अधिकतर मुनिभगवंतो को सुबह ही आहार लेना था।

नवकारशी के पच्चक्खाण भी आ गये और नवकारशी की गोचरी भी आ गई। गुरुदेव, आप सहित हम सभी आहार ग्रहण करने हेतु बैठ गये, पर हुआ यूँ कि जो मुनिभगवंत सबको दूध दे रहे थे उनसे थोड़ा दूध ज़मीन पर गिर गया।

''ध्यान रखकर दूध नहीं दे सकते ?'' गुरुदेव, आपकी इस डाँट का मुनिभगवंत कोई प्रत्युत्तर दे उसकी प्रतीक्षा किए बिना ही आपने आगे बोलना जारी रखा–

''आप सबको यह लगता होगा कि जरा सा तो दूध गिरा है, उसमें मुझे इतना गुस्सा करने की क्या ज़रुरत थी ? पर यह मत भूलो कि इतने दूध में तो गरीब आदमी के घर के पाँच लोगों की चाय बन जाती। हम संयमी इतनी जागृति नहीं रखेंगे तो ऐसी जागृति की अपेक्षा किससे करेंगे ?

गुरुदेव !

अत्यन्त छोटे–से प्रसंग को भी आप जिस दृष्टि से निरख सकते थे उस दृष्टि ने ही तो हमें आपके पावन नाम के आगे ''संघहितचिंतक'' विशेषण लगाने के लिए मजबूर किया है ना ?

गुरुदेव कहते हैं...

मोह के नाटक अथवा क्रोधादि भाव क्रूर कसाई जैसे हैं। ये चाकू लेकर खड़े हैं। जीव को मानो कह रहे हैं– ''तुम हमारे चुंगल में आ जाओ। तुम्हें छुरियों से घायल कर अनंतकाल की दुर्गति की यात्रा पर भेज देंगे।''

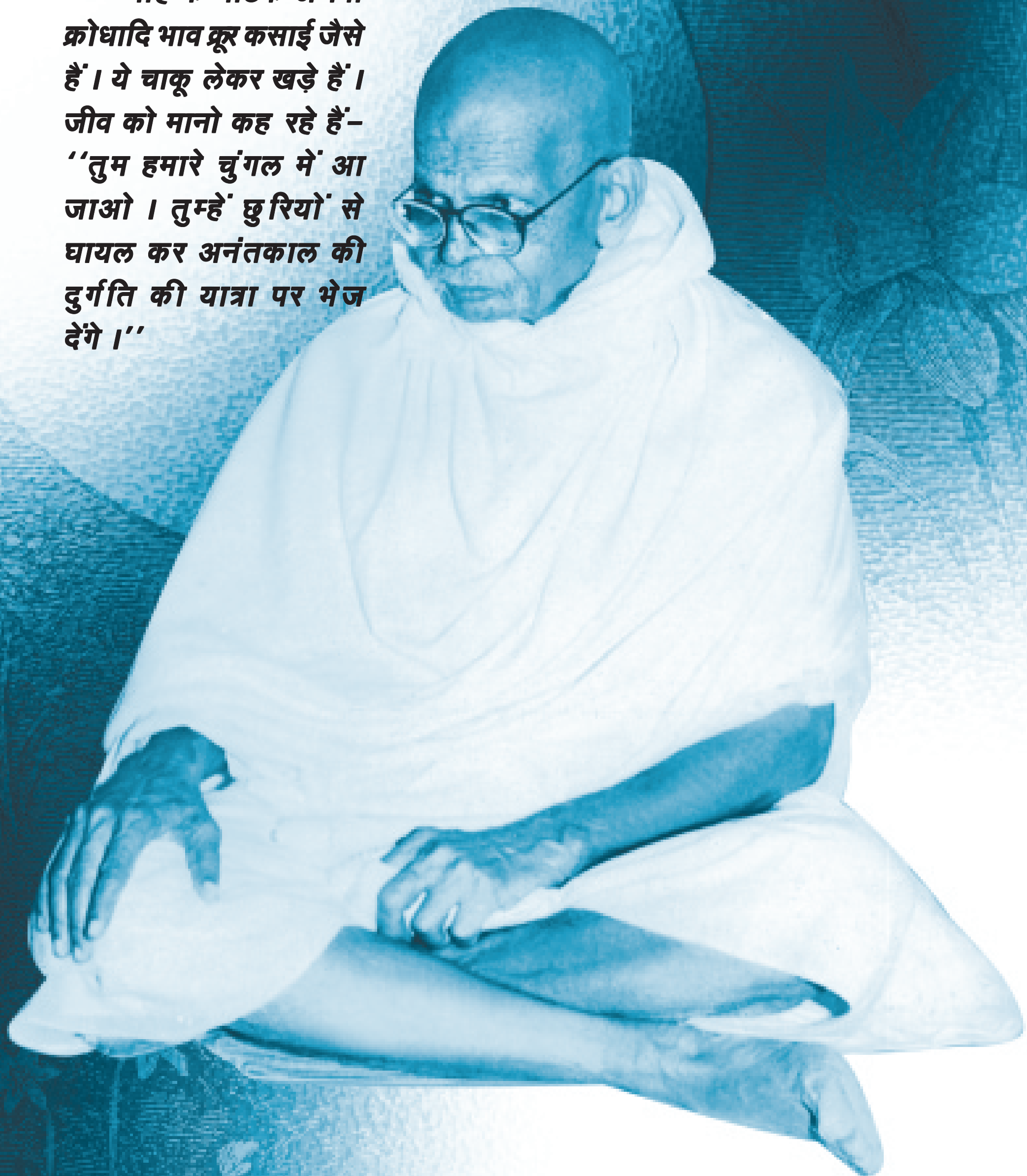

''गुरुदेव, यहाँ बहुत ठण्डी हवा चल रही है। आपको ठंड लग जायेगी। आपका आसन सामने की दीवार के पास लगा देते हैं। वहाँ हवा लगभग नहीं है। एक तो यह ठण्ड का मौसम है और फिर आपको शीत की परेशानी पहले से है। नाहक स्वास्थ्य बिगड़ेगा तो परेशानी खड़ी हो जायेगी।''

''नहीं मेरा आसन यहीं ठीक है।''

गुरुदेव, आपके इस जवाब को सुनकर मैं कुछ कहूँ उसके पहले ही आप बोल उठे–

''देखो रत्नसुंदर, इसी जगह मेरा आसन रखने का मेरा आग्रह सकारण है। इस जगह से सभी साधुओं पर मेरी नज़र रहती है, एक कारण यह है और दूसरा कारण यह है कि कोई भी व्यक्ति–चाहे वह पुरुष हो या स्त्री, युवा हो या युवती, बालक हो या बालिका–यदि उपाश्रय में आता है तो यहीं से आता है। मैं यहीं बैठूँ तो भीतर कौन जा रहा है, कौन किसके पास बैठा है–यह मेरे ध्यान में रहेगा ना ? काल अत्यन्त विषम है। संयम का पालन दिन–प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है और इसीलिए यही व्यवस्था बनाये रखना मुझे अधिक हितकारी लगता है।

गुरुदेव !

आश्रितों की सुरक्षा के लिए और उनका संयम टिकाने एवं उसे विशुद्ध व निर्मल बनाये रखने के लिए आप स्वयं की देह के प्रति भी इस हद तक कठोर हो सकते थे–हमारे सद्भाग्य की यह पराकाष्ठा है, इसके अलावा और क्या कहूँ ?

गुरुदेव कहते हैं...

पाप के उदय में जीव को क्लेश, संताप, असमाधि बहुत होती है, इसलिए आत्मा अशुभ कर्म के बंधन से दुर्गति की भागी ही नहीं, धर्महीन भी बनती है। अत: ऐसे पाप से बचने के लिए पुण्य चाहिए। एवं पुण्य के बिना सद्गति और सद् धर्म की सामग्री नहीं मिलती। अत: पुण्य की आवश्यकता होती है।

ऐसी समझ के कारण यदि पुण्य का लोभ रहे तो ऐसे लोभ को ग़लत नहीं कहा जा सकता।

वह स्थान था मुंबई–नमिनाथ उपाश्रय। संयमजीवन अंगीकार किये मुझे अभी एक वर्ष भी पूर्ण नहीं हुआ था। मैं अपने आसन पर बैठे–बैठे HERO पेन का ढक्कन देख रहा था। सुवर्ण रंगी ढक्कन देखकर मेरे चेहरे पर छलक आई मनभावन खुशी, गुरुदेव! आपकी नज़रों में आ गई।

''रत्नसुंदर....''

मैं तुरन्त आपके निकट आया।

''क्या कर रहे थे ?''

''विशेष कुछ नहीं।''

''पेन का ढक्कन...''

''जी, वही देख रहा था।''

''बहुत सुंदर है ना ?''

''जी हाँ''

और गुरुदेव, आपश्री ने एक मुनिवर को बुलाया। पात्र रंगने का काला रंग मंगवाया और मुनिवर को सुवर्णरंग के ढक्कन को काला रंग लगाने की आज्ञा दी।

''गुरुदेव, ढक्कन ख़राब हो जाएगा...''

''ढक्कन ख़राब हो जाए तो कोई बात नहीं, पर ढक्कन पर राग प्रकट करने से तुम्हारी आत्मा कलुषित हो जाए, यह कैसे चलेगा ?

गुरुदेव !

आत्महित की ऐसी चिन्ता करने वाले आपश्री जैसे गुरुदेव को पाकर मुझे ऐसा महसूस होता है कि सचमुच मैं जीवन का बहुत बड़ा युद्ध जीत गया हूँ।

गुरुदेव कहते हैं...

सर्व पापों के त्याग के लिए अशक्ति दर्शाने वाला मन, यदि संभव पापों के त्याग के लिए भी सत्व प्रकट करने हेतु तैयार नहीं है तो निश्चित् समझो कि ''पाप भयंकर है'', मन की यह श्रद्धा केवल स्वयं के साथ ठगी करने के सिवाय और कुछ भी नहीं है।

मुंबई से विहार के बाद हम जा रहे थे अहमदाबाद की ओर। बीच में आया वापी। वहाँ पाच दिनों के लिए स्थिरता थी। एक दिन संध्यासमय प्रतिक्रमण करने के बाद बहुत नींद आ रही थी। गुरुदेव, मैं आपकी अनुमति लेने आया और आश्चर्य, आपने मुझे सो जाने की अनुमति दे दी!

संथारा बिछाते बिछाते मैं सोच रहा था, ''ऐसी उदारता (?) गुरुदेव, यह तो पहली बार दर्शायी आपने।'' थोड़े समय में मैं सो तो गया, परन्तु गहरी नींद में मुझे लगा, कोई मुझे उठा रहा है। आँखें खोलीं- देखा- गुरुदेव आप ही थे।

''उठो।''

अचानक मेरी निगाह दीवार पर लगी घड़ी पर गई। दो बजे थे। मैं आगे कुछ विचार करूँ इसके पहले आप ही बोल उठे,

''रात को तुम आठ बजे सो गये थे ना? अभी दो बजे हैं। छ: घण्टे की नींद पूरी हो गई। अब बैठ जाओ स्वाध्याय करने के लिए। रात लम्बी है। आसमान में चन्द्र खिला है, स्वाध्याय में आनन्द आयेगा। देखो मैं भी अभी चन्द्र के प्रकाश में लिखने ही बैठ रहा हूँ।''

गुरुदेव!

रात में जल्दी सो जाने की आपने जब मुझे अनुमति दी तब मुझे पता नहीं था कि उसमें आपकी उदारता नहीं, वणिक्‌बुद्धि थी। ''आचार्यो जिनधरमना दक्षव्यापारी शूरा'', यह आपकी ही रचना है ना?

गुरुदेव कहते हैं...

बात-बात में जिसे 'बुरा' लग जाता हो और बात-बात में जिसे 'दु:ख' लग जाता हो उसके साथ मित्रता करने से अपने आपको सदा दूर ही रखो, क्योंकि उसे खुश रखने के प्रयास में आपकी जिन्दगी ही पूरी हो जाएगी।

याद रखना, ***यह ज़िन्दगी तो प्रभु को ख़ुश करने के लिए और उसके द्वारा आत्मा को सुखी बनाने के लिए मिली है। इस ज़िन्दगी में इसके अलावा और कुछ करने की आवश्यकता नहीं है।***

स्थान था अहमदाबाद। चातुर्मास हमारा था दशापोरवाड़ सोसायटी में। पर्युषण पर्व की आराधना करवाने मुनि भगवंत अलग अलग स्थानों पर गये थे और इसीलिए गुरुदेव के साथ हम दो ही साधु थे।

मुझे संवत्सरी का उपवास तो था ही, पर उपवास बहुत कठिन हुआ था। रात को किसी भी तरह नींद नहीं आ रही थी। संथारे में पड़ा पड़ा करवटे बदल रहा था और अचानक मुझे उल्टी हो गई।

उल्टी की आवाज़ सुनकर गुरुदेव आप जाग गये। तुरन्त मेरे संथारे के पास आये। नीचे ज़मीन पर पड़ी उल्टी को आपने अपने हाथों से उठाकर कटोरे में भरा। ज़मीन साफ की। नीचे जाकर उल्टी को परठने की विधि की, और ऊपर आकर मेरी कमर भी दबा दी।

गुरुदेव, सुबह आपने मुझे प्रतिक्रमण करवाया। अपने वस्त्रों का पड़िलेहण तो किया ही, परन्तु मेरे सभी वस्त्रों का पड़िलेहण भी आपने ही किया। मुझे पुन: सुलाकर मेरे अत्यन्त पीड़ित शरीर को आपने दबा दिया। कुछ स्वस्थता आने के पश्चात् आप स्वयं मेरा हाथ पकड़कर मुझे मंदिर दर्शन करने ले गये।

गुरुदेव !

आज भी यह प्रसंग स्मृतिपथ पर आ रहा है और मुझे यह भी समझ में आ रहा है कि संयमजीवन में मुझे कभी 'ख़ालीपन' का अनुभव क्यों नहीं हुआ ?

गुरुदेव कहते हैं...

कामपुरुषार्थ तो पशुगति में भी सुलभ है। अर्थपुरुषार्थ तो अधर्मी को भी सुलभ है। परंतु, दुर्लभतम पुरुषार्थ यदि कोई है तो वह है धर्मपुरुषार्थ। उत्तम जीवन को सफल बनाना हो तो इस पुरुषार्थ को अपना लीजिए।

बोटाद शहर में रात को केवल पुरुषों की सभा के समक्ष उस प्रवचन में गुरुदेव, धन्ना अणगार की सज्झाय सुनाते सुनाते आप कैसे आनन्दित हो गये थे यह तो आपको भी याद होगा और उसमें भी धन्ना द्वारा प्रभु वीर से माँगे गए अभिग्रह को वर्णित करने वाली यह पंक्ति,

''छट्ठ तप आयंबिल पारणे, करवो जावज्जीव''

बोलते बोलते आप अत्यन्त गद्‌गद् हो गये थे, यह ख़ुद मैंने देखा था।

दूसरे दिन मैं गोचरी में आपके पात्र में मिठाई का टुकड़ा रखने आया और आपने मुस्कराते हुए इन्कार कर दिया।

''पर क्यों ?''

''बस, ऐसे ही।''

''नहीं, आपको यह ग्रहण करनी ही होगी।''

और गुरुदेव, उस समय आपका उत्तर मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। ''कल धन्ना की सज्झाय बोलते बोलते मुझे अपने आप पर घृणा हो आई। धन्ना यदि जीवनभर के लिए बेले के पारणे आयंबिल कर सकता है तो मैं जीवनभर के लिए मिठाई त्याग भी नहीं कर सकता ? बस, उसी समय प्रवचन के पाट पर ही मैंने जीवनभर के लिए मिठाई त्याग की प्रतिज्ञा ले ली।''

गुरुदेव !

अणाहारी पद पाने की आपकी इस तड़पन को समझने की ज़रा सी भी बुद्धि मुझ में यदि होती तो मुझे लगता है कि तप-त्याग के मामले में आज मेरी यह दरिद्रता नहीं होती।

गुरुदेव कहते हैं...

आग, साँप और बाघ के साथ खेलते रहने के बावजूद भी जीवन को सलामत रखना संभव है, पर कुनिमित्तों के बीच रहकर सद्गुणों को सुरक्षित रखने में सफलता मिलना सर्वथा असंभव है। सद्गुणों को सलामत रखना है ? कुनिमित्तों से तत्काल दूर हो जाइए।

अहमदाबाद के ज्ञानमंदिर में चातुर्मास करने का निर्णय लगभग हो चुका था। सिर्फ घोषणा करनी बाकी थी। अन्य स्थानों पर भी चातुर्मास के लिए मुनियों को भेजना था। किसे कहाँ भेजना है इस चिन्ता में गुरुदेव, आप व्यस्त थे और तभी मैंने आपसे पूछा था–

''पूज्यपाद पंन्यासजी श्री हेमंतविजयजी महाराज चातुर्मास में हमारे साथ रहने वाले हैं ?''

''नहीं।''

आपका यह जवाब सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य इसलिए हुआ कि मुझे पक्के समाचार मिले थे कि पूज्य पंन्यास श्री हेमन्तविजयजी महाराज ज्ञानमंदिर में हमारे ही साथ चातुर्मास करने वाले हैं।

मेरे चेहरे की उलझन देखते ही गुरुदेव, आपने मुझे कहा था–

''देखो रत्नसुंदर, पू.पं श्री हेमन्तविजयजी महाराज मुझसे बड़े हैं। वे हमारे साथ चातुर्मास नहीं करने वाले, बल्कि हम उनके साथ चातुर्मास करने वाले हैं। आख़िर तुम विनयधर्म की महत्ता समझते हो कि नहीं ?''

गुरुदेव !

आज समझ में आता है कि आप सभी के लिए इतने ''मधुर'' क्यों थे ? आपके जीवनदूध में विनय की मिठास सदा और सर्वत्र मौजूद होती ही थी। आपको दूर रखना किसे अच्छा लगेगा ?

गुरुदेव कहते हैं...

यदि गुण गाने हैं या प्रशंसा करनी है तो दूसरों की करो और निन्दा करनी है तो स्वयं की।

कारण ?

शुभ कोटि की आत्मनिन्दा तो एक ऐसा असरकारक रसायन है जो भयंकर कर्म के रोग को भी क्षणभर में ध्वस्त कर देता है।

''यहाँ आओ देवसुंदर, यह पत्र आपने लिखा है ?''

संसारी के नाते मेरे पिताजी और संयम के नाते मेरे गुरुजी यानि देवसुंदर महाराज। गुरुदेव, आपने उन्हें बुलाया।

''हाँ, मैंने लिखा है।''

''उसमें आपने क्या लिखा है इसका आपको कुछ ख़याल है भला ?

''नहीं।''

''देखो, इस पोस्टकार्ड में आपने किसी को लिखा है, ''तुम्हारे पिताजी की आज्ञा का पालन करना।'' हमने संयमजीवन स्वीकार किया है । हम ऐसा लिख सकते हैं भला ?''

''क्यों नहीं लिख सकते ?''

''नहीं लिख सकते।''

''पर क्यों ?''

''उसके पिता उसे व्यापार में अनीति का आचरण करने की आज्ञा भी दे सकते हैं, होटल में जाने की आज्ञा भी दे सकते हैं और रात्रिभोजन करने की आज्ञा भी दे सकते हैं। ये सभी आज्ञाएँ क्या उसे माननी चाहिए ?''

''नहीं।''

''बस, इसीलिए आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ कि किसी को भी पत्र लिखो तब इतना विशेष रुप से ध्यान रखो कि उसकी किसी भी प्रकार की पापप्रवृत्ति में हमारी सहमति कदापि न हो।''

गुरुदेव !

आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर पाप से सदैव दूर रहने की वृत्ति आपने कैसे आत्मसात् की होगी कि नितांत छोटी दिखने वाली बात में भी आप इतनी सावधानी रख लेते थे।

वंदन है आपके ''पापभय'' गुण को।

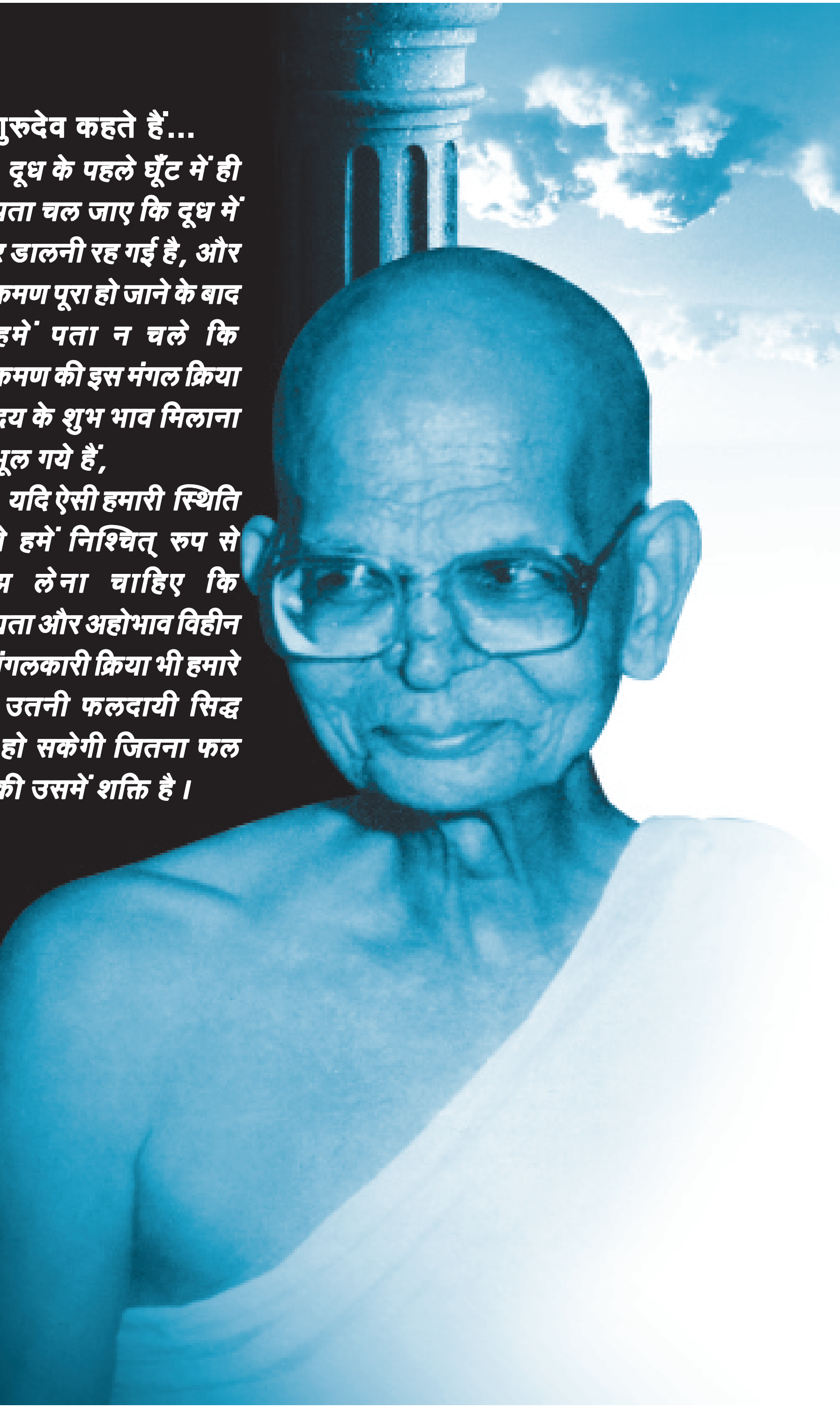

गुरुदेव कहते हैं...

दूध के पहले घूँट में ही हमें पता चल जाए कि दूध में शकर डालनी रह गई है, और प्रतिक्रमण पूरा हो जाने के बाद भी हमें पता न चले कि प्रतिक्रमण की इस मंगल क्रिया में हृदय के शुभ भाव मिलाना हम भूल गये हैं,

यदि ऐसी हमारी स्थिति है तो हमें निश्चित् रूप से समझ लेना चाहिए कि एकाग्रता और अहोभाव विहीन यह मंगलकारी क्रिया भी हमारे लिए उतनी फलदायी सिद्ध नहीं हो सकेगी जितना फल देने की उसमें शक्ति है।

''गुरुदेव ! आज तो सप्तमी है।''

''मुझे मालूम है।''

''आपका स्वास्थ्य भी अच्छा नहीं है।''

''मैं जानता हूँ।''

''डॉक्टर ने भी अभी तप करने से...''

''मुझे इन्कार किया है।''

''फिर भी आज आपने एकासना कर लिया ?''

''हाँ।''

''पर कोई कारण ?''

अहमदाबाद–उस्मानपुरा के चातुर्मास के दौरान मंदिर में दर्शन करने के बाद गुरुदेव, मैंने आपसे यह प्रश्न किया था।

''कल शाम के प्रतिक्रमण में एक छोटा–सा बच्चा ''शांति'' बोला था। तुमने सुनी थी ?''

''हाँ''

''वह 'शांति' कैसी बोला था ?''

''बहुत ही सुंदर ! बस, वह बोलता ही रहे और हम सुनते ही रहें ऐसी मधुर थी उसकी आवाज़।''

''बस, तो उस बच्चे द्वारा बोली गई 'शांति' की अनुमोदना में आज मैंने एकासना किया है।''

गुरुदेव !

सत्कार्यों को करने के अवसर का लाभ तो आप उठा ही लेते थे, पर सत्कार्यों की अनुमोदना करने के लिए भी आप स्वयं अवसर खड़े कर लेते थे। कमाई करते ही रहने की आपकी कला कमाल की थी !

गुरुदेव कहते हैं...

धर्मप्रवृत्ति में पापविचार को भूल से भी प्रवेश मत देना, पर पापप्रवृत्ति में धर्मविचार को प्रवेश दिये बिना कभी मत रहना–पापप्रवृत्ति की रुचि को वह तोड़कर ही रहेगा।

बीज को मिट्‌टी मिल जाती है और वह स्वयं के विकसित होने की क्षमता प्रकट किये बिना नहीं रहता। स्याही की बूँद को ब्लॉटिंग पेपर मिल जाता है और वह पूरे ब्लॉटिंग पेपर पर फैले बिना नहीं रहती। व्यापारी के पुत्र के हाथों में भले एक ही रुपया हो, लाखों–करोड़ों रुपयों की उथल–पुथल करने हेतु दौड़ लगाये बिना वह नहीं रहता।

सावरकुंडला की ओर विहार करते हुए एक गाँव में एक श्रावक के गृहमंदिर में गुरुदेव, हम आपके साथ चैत्यवंदन करने बैठे थे। केवल सात–आठ इंच की छोटी–सी धातु की बनी शांतिनाथ प्रभु की प्रतिमा के समक्ष अपना चैत्यवंदन हो रहा था और गुरुदेव, इस चैत्यवंदन में आप ऐसे ओत–प्रोत हो गये थे कि एक साथ तीन स्तवन और वो भी अलग–अलग रागों में बोलने के बाद ही आप रुके थे।

बाहर आने के पश्चात् आपने कहा था कि– ''चन्द्रदर्शन से सागर में यदि लहरें उछलने लगती हैं तो प्रभु दर्शन से भक्त हृदय में भावों की लहरें न उछलें, यह हो ही कैसे सकता है ?''

गुरुदेव !

विशिष्ट आराधना करने वाला महान् बनता है ऐसा नहीं है, परन्तु, जो आत्मा प्रत्येक आराधना को विशिष्ट रुप से करती है वही महान् बन सकती है। इस बात का सबूत आप स्वयं ही थे, यह मैंने अनेक बार आपश्री में देखा था।

गुरुदेव कहते हैं...

लघुता व्यक्त करना अलग बात है और प्रशंसा प्राप्त करने के लिए लघुता का दिखावा करना अलग बात। लघुता का दिखावा करने से तो अभिमान पुष्ट होता है, जबकि लघुता व्यक्त करने से अभिमान टूट जाता है।

यह याद रखना।

मन की मोहनीय के साथ गाढ़ी मित्रता है। इस मित्रता को अखण्डित रखने के लिए मन सभी प्रकार के स्वाँग धरने के लिए तैयार रहता है।

''गुरुदेव, आप तो वर्धमान तप की ओलियों पर ओलियाँ किये जा रहे हैं, पारने में मिठाई तो लेते ही नहीं। आपको नहीं लगता कि शरीर की शक्ति बनी रहे इसके लिए ही सही, थोड़ी मिठाई तो आपको लेनी ही चाहिए।

''रत्नसुंदर, तुम तो मिठाई खाते हो ना ?''

''हाँ।''

''एक घण्टे में कितने किलोमीटर चल सकते हो ?''

''पाँच अथवा साढ़े पाँच किलोमीटर।''

''और मैं ? मैं आसानी से छः किलोमीटर चल लेता हूँ।''

''यही तो मेरी उलझन है कि हम मिठाई खाने वालों के मुकाबले मिठाई न खाने वाले आपमें इतनी अधिक शक्ति और स्फूर्ति कहाँ से आई ?''

''तुम जानते हो, हम जब माँ के गर्भ में थे ना तब हमारी माँ ने भारी (गरिष्ठ) खाद्य खाना बंद कर दिया था ? इसका अर्थ ? यही कि हमारे शरीर की संरचना सामान्य पदार्थों से ही हुई है, भारी पदार्थों से नहीं। यदि हम अपने शरीर को स्फूर्तिमान रखना चाहते हैं तो हम उसे जितने हल्के द्रव्य देंगे उतना ही वह अधिक स्फूर्त रहेगा। मेरी स्फूर्ति का रहस्य यही है। बोलो, मिठाई खाते रहना है या फिर छोड़ देना है ?

गुरुदेव !

कदाचित् जीवन पूरा हो जाता तो भी यह वास्तविकता मेरे ध्यान में नहीं आती। मिठाई आत्मा के लिए अयोग्य है यह मैं जानता था, पर शरीर के लिए भी वह अनुकूल नहीं है यह समझ तो आपसे ही प्राप्त हुई।

कमाल ! कमाल !!

गुरुदेव कहते हैं...

सुख बाह्यवस्तु का धर्म नहीं है, वह तो आत्मा की चीज़ है । परन्तु, उसकी अनुभूति तभी होती है जब हृदय में कोई चिन्ता न हो, मन में कोई भय न हो, अंतर में कोई संताप न हो, कोई आकुलता न हो । मन-हृदय-अंतर निश्चिन्त, निर्भय, शान्त और आत्मा आनंदित हो तो ही सुख का-सच्चे सुख का अनुभव हो सकता है । ऐसा सुख प्रदान करने की शक्ति केवल धर्म में ही है ।

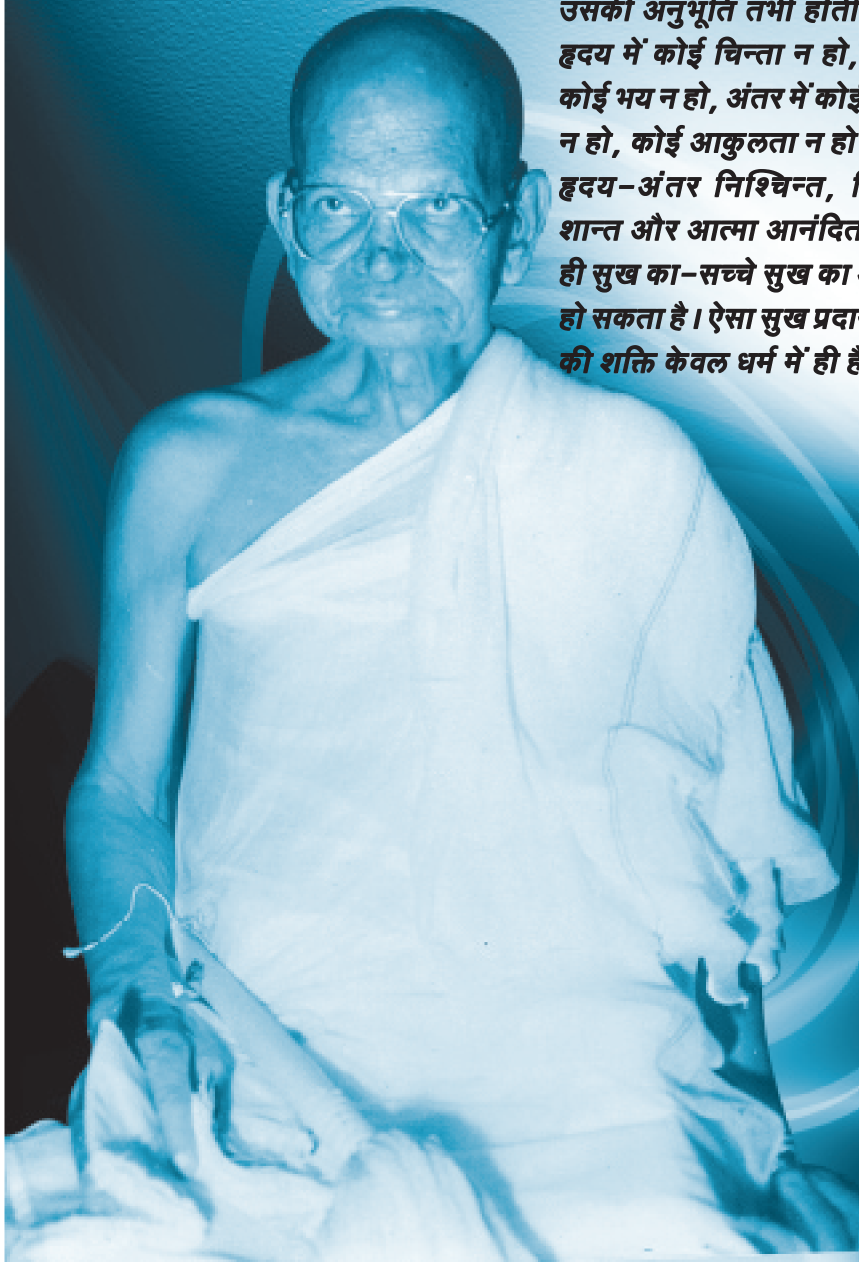

''स्वाध्याय हो गया ?''

''हाँ''

''पूरा स्वाध्याय ?''

''केवल पन्द्रह मिनट का स्वाध्याय ही शेष रहा है, वह हम कल कर लेंगे ।''

''पर अभी ही कर लो तो ?''

''रात के पौने बारह बज चुके हैं और हम सबको गहरी नींद आ रही है । वैसे भी प्रतिदिन तो हम बारह बजे तक स्वाध्याय करते ही हैं । सभी को ''कम्मपयड़ी'' का पाठ अच्छी तरह आता है, कल हम पूरा स्वाध्याय कर लेंगे ।''

अहमदाबाद-ज्ञानमंदिर की गैलरी में बैठे-बैठे आप चन्द्र के प्रकाश में दिव्यदर्शन साप्ताहिक का विवरण लिख रहे थे और हम सभी को स्वाध्याय समाप्त करके आसन की ओर जाते देखकर आपने हमें रोककर यह प्रश्न पूछा था ।

''देखो, शरीर है इसलिए नींद तो आयेगी ही । एक काम करो । तुम सभी २५-२५ खमासमने दे दो, नींद उड़ जायेगी ।''

हम सभी बिना खमासमने दिये सीधे स्वाध्याय करने बैठ गये । हमें यह सौदा ज्यादा सस्ता (?) लगा !

गुरुदेव !

आपश्री हमें बार बार कहते थे कि- ''गधे के पास काम करवाने के लिए कुम्हार गधे के ''मूड़'' को नहीं देखता । साधना मार्ग में शरीर का कस निकालना हो तो उसके 'मूड़' की बहुत चिन्ता मत करो ।

गुरुदेव कहते हैं...

शरीर और मन की मुलायमता-सुकुमारता, आत्मा में कायरता तथा नि:सत्वता पैदा करती है और इसीलिए उससे आत्मा को बचाने के लिए शरीर को तप-त्याग में एवं मन को शुभविचारों में जोड़ते जाओ।

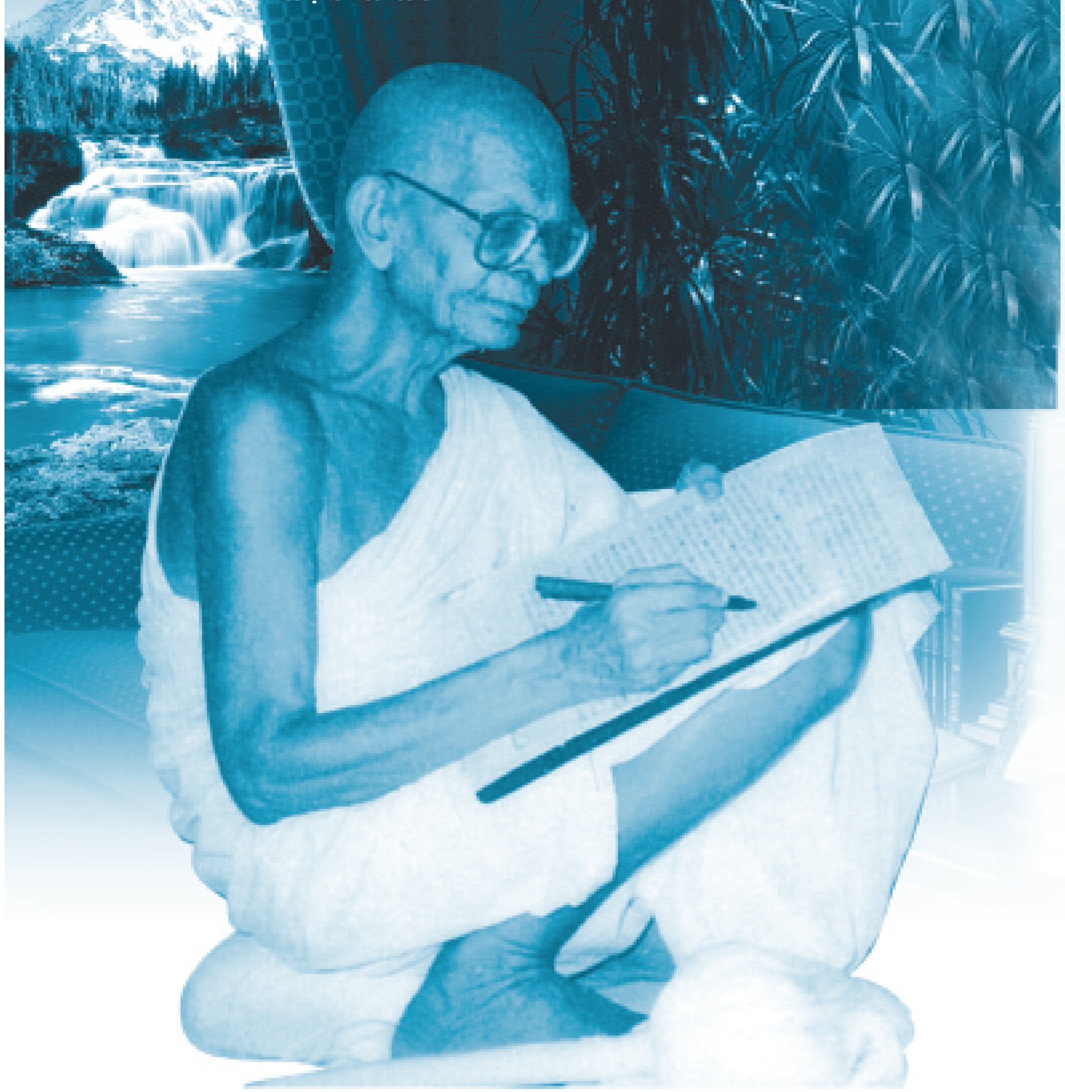

''कौन ?''

''मैं रत्नसुंदर।''

''कितने बजे होंगे अभी ?''

''लगभग चार।''

उपाश्रय की छत के नीचे गुरुदेव, आप बैठे हैं। कड़ाके की ठण्ड है । आपके पूरे शरीर पर कमली लिपटी हुई है। केवल दो हाथ कमली के बाहर हैं। एक हाथ में पुष्टे पर रखे पन्ने हैं और दूसरे हाथ में पेन है।

मैं आपके निकट आया।

''गुरुदेव, नीचे पधारिए।''

''आना तो पड़ेगा ही !''

''यहाँ आप कब पधारे गुरुदेव ?''

''रात के १० बजे से बैठा हूँ।''

''अविरत छ: घण्टे ?''

''हाँ।''

''कमाल करते हैं गुरुदेव !''

''रत्नसुंदर, कमाल तो प्रभुवचनों का है। उन पर लिखने के लिए जब कलम उठती है तब वह कहीं थमने का नाम ही नहीं लेती। तुमने अब तक इसका स्वाद नहीं चखा, इसलिए तुम्हें ज़्यादा तो क्या कहूँ ? पर, एक बार तुम इसे चखकर देखो तो फिर तुम्हें भी मुझ जैसा ही नशा आ जायेगा।''

गुरुदेव !

शरीर नाम के उपकरण का आपने जिस हद तक सदुपयोग कर लिया, उस हद तक सदुपयोग आज के काल में किसने किया होगा यह प्रश्न है। हम सबके लिए आप आलंबन भी हैं और आदर्श भी हैं।

गुरुदेव कहते हैं...

जीवन में प्रवृत्ति कोई भी जारी हो, पर मन को कदापि दुषित नहीं करना चाहिए। काया पाप में रत हो तो भी मन को भीतर से धर्म और वैराग्य की भावनाओं में मग्न रखना चाहिए, क्योंकि मन की कलुषितता से जो क्षति होती है उसकी भरपाई कभी नहीं की जा सकती।

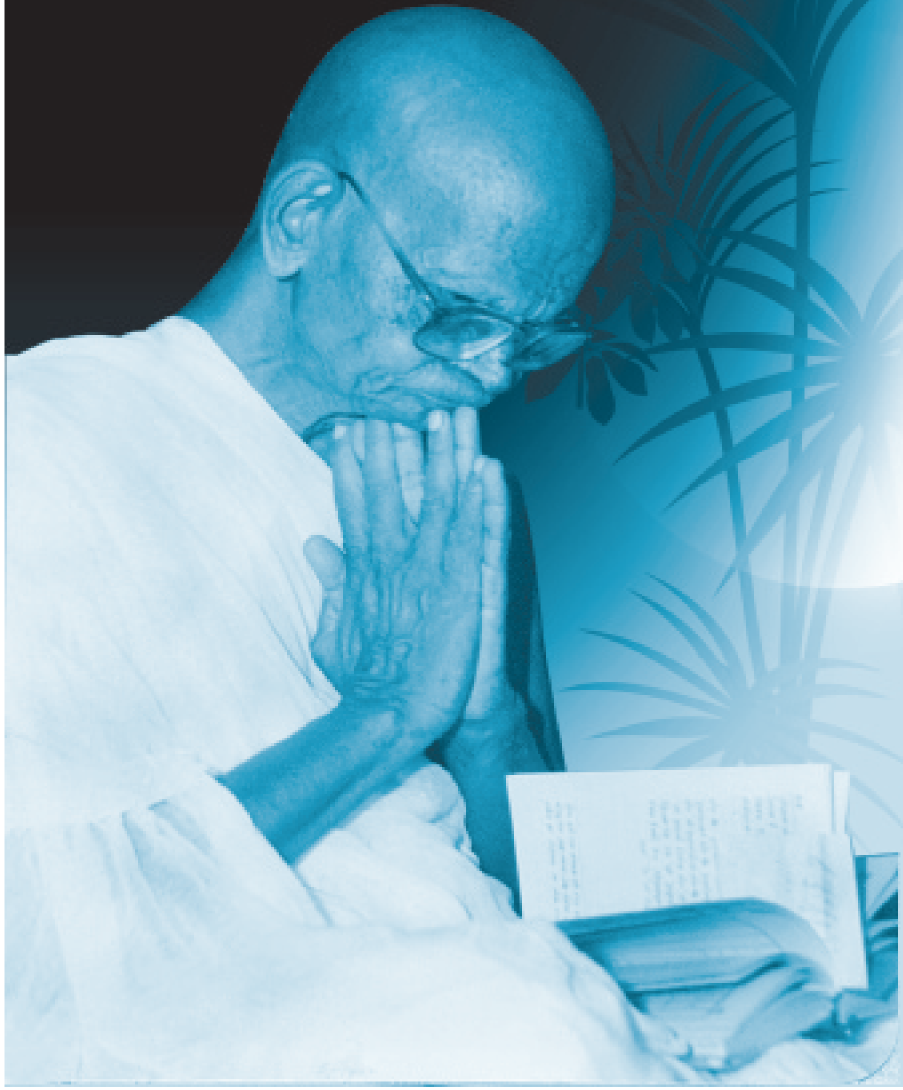

पता नहीं क्यों, पर गुरुदेव आज आपके चेहरे पर कुछ उदासी झलक रही थी। आपने सुबह की गोचरी ग्रहण की तो सही, पर आप भीतर से व्यथित हैं ऐसा आपके चेहरे पर स्पष्ट दिखाई दे रहा था। आप प्रवचन में जाने के लिए तैयार हो रहे थे और तब मैंने हिम्मत करके आपसे पूछ ही लिया–

''गुरुदेव, स्वास्थ्य मैं कुछ गड़बड़ ?''

''नहीं।''

''आपका चेहरा यह बता रहा है कि आप अभी कुछ व्यथा का अनुभव कर रहे हैं।''

''तुम्हारा अनुमान सही है।''

''क्या मैं कारण जान सकता हूँ ?''

''जानते हो तुम आज क्या तिथि है ?''

''पूनम।''

''पूरी रात चन्द्रमा आकाश में रहा। उसका प्रकाश उपाश्रय में सतत् आता रहा। मैंने सोचा था कि मैं एकाध घण्टे में उठ जाऊँगा। लेकिन पता ही नहीं चला ऐसी गहरी नींद आज मुझे कैसे आ गई ? उजाले की पूरी रात व्यर्थ गई। कुछ भी लिखना नहीं हुआ। तुम ही बताओ, प्रसन्नता कैसे टिकेगी ?''

गुरुदेव !

आप यह मानते रहे कि ''नींद आ गई तो रात बिगड़ी।'', जबकि ''नींद न आये तो रात बिगड़ी'', यह हमारी मान्यता है। ऐसे में क्या आपको लगता है कि हमारा उद्धार हो पाएगा भला ?

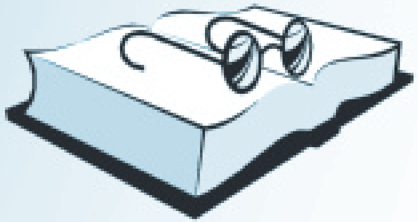

गुरुदेव कहते हैं...

इसी जनम में ४० वर्षों में प्रतिदिन की ४-४ रोटियों के हिसाब से लगभग ५६,००० रोटियाँ तो हम खा चुके और प्रतिदिन के ४ लीटर पानी के हिसाब से ५६,००० लीटर पानी हम पी चुके, फिर भी खान-पान की भूख नहीं मिटी। ऐसी राक्षसी भूख को इस जनम में, पवित्र आत्महित की साधना में प्रधानता कभी मत दो।

''यह तो छोटा-सा गाँव है। यहाँ पक्का नमक मिला ही कैसे ?'' गुरुदेव, आपका शरीर १०४ डिग्री बुखार की घोषणा कर रहा था। वर्धमान तप की १०८ वीं ओली प्रारंभ किए अभी चार ही दिन हुए थे। मुंबई की ओर हमारी विहारयात्रा प्रारंभ हो चुकी थी। आप आयंबिल करने बैठे थे और फीकी दाल में नमक डालने के लिए आपके सामने नमक रखा तो सही, पर आपके इस प्रश्न से हम सब निरुत्तर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे थे। आप समझ गये। हमारे प्रत्युत्तर का इन्तज़ार किये बिना आपने इतना ही कहा-

''यहाँ श्रावक का कोई घर नहीं है। मेरी आयंबिल की गोचरी आप अन्य घरों में जाकर ले आये हो। मुझे लगता है कि निकट के शहर से जरुर कोई श्रावक गोचरी लाये हैं और उसमें से ही यह पक्का नमक तुमने ग्रहण किया है।

सभी के चेहरे यह कहते हैं कि मैं सच बोल रहा हूँ। एक काम करो- या तो यह नमक आप में से कोई एक उपयोग में ले लो या उसके परठने की विधि कर लो, मेरे पेट में तो यह नमक कतई नहीं जायेगा।''

गुरुदेव !

आपकी पापभीरुता-प्रमादभीरुता-भवभीरुता-आज्ञाभंग-भीरुता और अशुभकर्मबंधभीरुता आज हमारे स्वप्न का विषय भी नहीं बन पाई। क्या यह हमारी भारीकर्मिता ही है ?

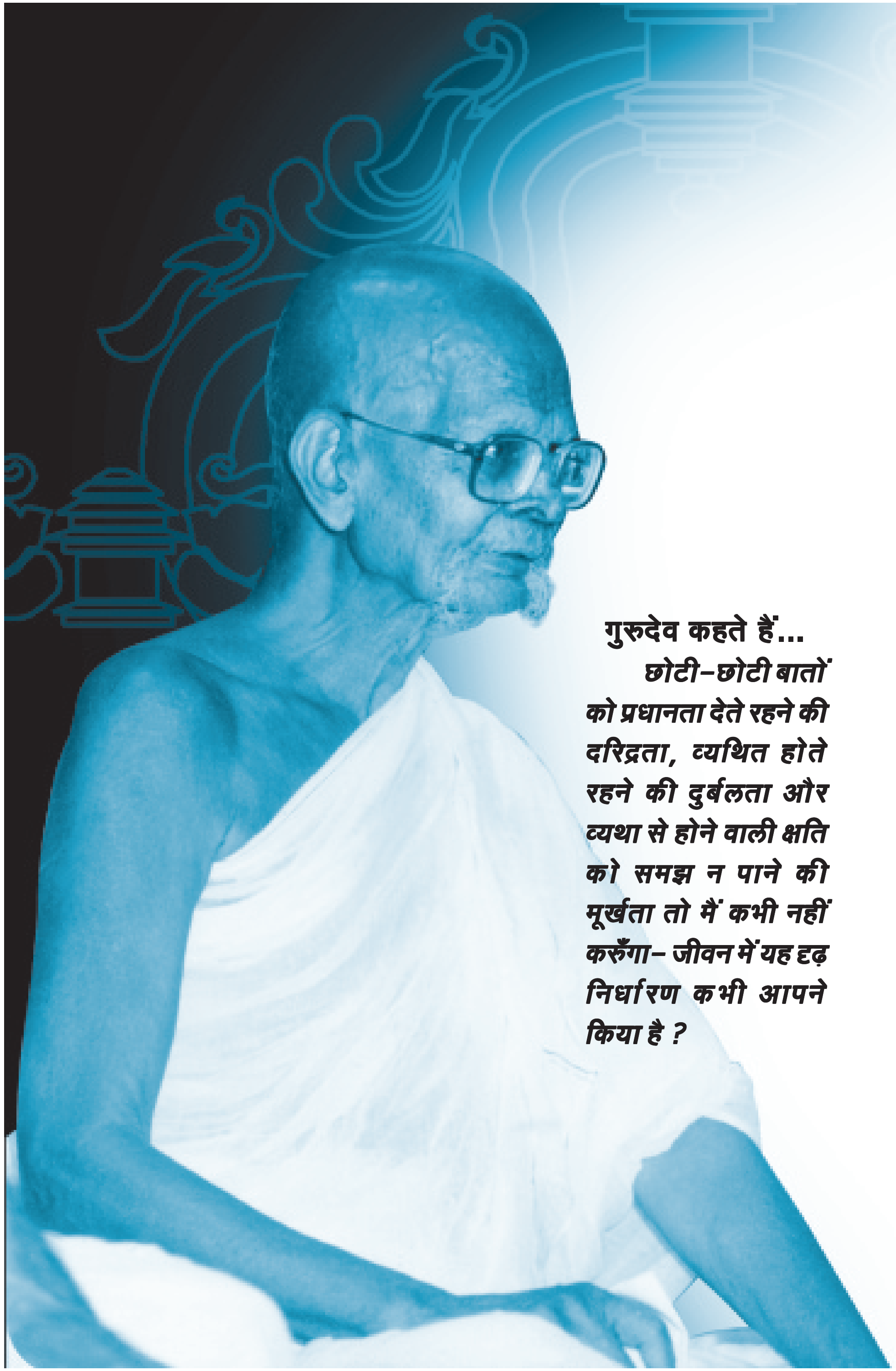

गुरुदेव कहते हैं...

छोटी–छोटी बातों को प्रधानता देते रहने की दरिद्रता, व्यथित होते रहने की दुर्बलता और व्यथा से होने वाली क्षति को समझ न पाने की मूर्खता तो मैं कभी नहीं करूँगा– जीवन में यह दृढ़ निर्धारण कभी आपने किया है ?

सौराष्ट्र का एक छोटा–सा गाँव है। शाम को हम उस गाँव में पहुँचे हैं। जैनों के बीस–पच्चीस घर होंगे यहाँ। भाविक जैनेतरों के घर भी अच्छी संख्या में हैं। ठंड का मौसम है। रात के नौ बजने वाले हैं। मैं सोने की तैयारी कर रहा हूँ और गुरुदेव, तभी अचानक मैंने देखा कि ८–१० भाई आपके पास आकर विनती कर रहे हैं–

''साहब, प्रवचन देंगे ?''

मैं आपके पास ही खड़ा था गुरुदेव। आपने मुझसे पूछा, ''रत्नसुंदर, प्रवचन देने जाओगे ?''

''गुरुदेव, बड़ी नींद आ रही है।''

''तुम सो जाओ, मैं खुद जा रहा हूँ। श्रावकों की इतनी भक्ति स्वीकार लेते हो और जब उन्हें प्रभु के वचन सुनाने की बात आती है तब अपने शरीर की सुखशीलता की पुष्टि करते हो ? जिनशासन के अनन्त ऋण से मुक्त होने की कोई वृत्ति ही नहीं ? अनन्त काल से शरीर संभालते आये हो, सहलाते आये हो और उसी ने आत्मा का भवभ्रमण बढ़ाया है। उत्तम संयमजीवन को पाने के बाद भी यही मूर्खता करते रहना, यह कहाँ तक उचित है ?

गुरुदेव !

आपके इस आक्रोश के गर्भ में बसे संघप्रेम को देखकर हृदय आपके चरणों में झुक जाता है। 'संघ को नमस्कार करने के बाद ही प्रभु देशना फरमाते हैं'–इस उक्ति को वास्तव में आप अपने जीवन में चरितार्थ करते रहे।

गुरुदेव कहते हैं...

वैराग्य का प्रमाण बढ़ाने से संसार के पदार्थ अधिक असार, नि:सत्व और संसार की क्रियाएँ अधिक व्यर्थ-निष्फल लगती हैं। वैराग्य का अर्थ ही यही है कि सांसारिक पदार्थ असार और सांसारिक क्रियाएँ व्यर्थ लगें। असार अर्थात् बिल्कुल सत्व रहित और व्यर्थ अर्थात् बिल्कुल निष्फल-बेकार-फिजुल। जब वैराग्य का प्रमाण बढ़ाने से सांसारिक पदार्थ अधिक नि:सत्व और निष्फल लगने लगे तब पहले इन पदार्थों के मोह के प्रभाव के कारण जो धर्मसाधनाएँ रसहीन होती थीं वे ही धर्मसाधनाएँ मोह का प्रभाव न रहने के कारण भावभरी होने लगती हैं और धर्मसाधनाओं में जोम-जोश-उल्लास बढ़ते हैं।

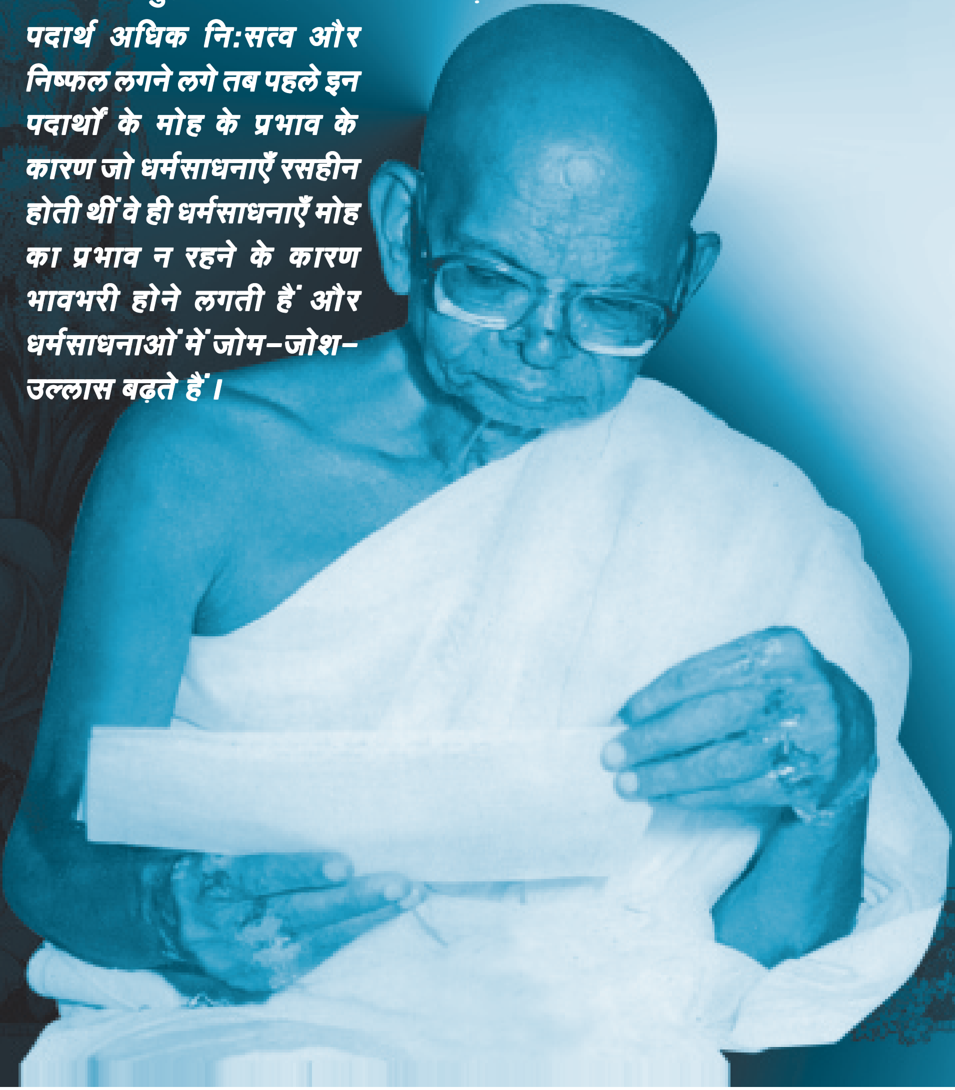

उस वर्ष चातुर्मास था लालबाग-मुम्बई में। गुरुदेव, सभी आपके वैराग्यरस से भरपूर प्रवचनों के पीछे पागल थे। आपके प्रवचनों का समय था प्रात: ९:०० से १०:०० का, और आपने मुझे १०:०० से १०:३० बजे तक ''भीमसेन चरित्र'' पर प्रवचन करने की आज्ञा दी थी।

कमाल की बात तो यह थी कि आपने स्वयं ही मेरे अध्ययन का समय निश्चित् कर दिया था-प्रात: ८:३० से ९:१५ और १०:३५ से ११:१५।

शुरु में इसके पीछे निहित कारण को मैं समझ न सका, पर पर्युषण के बाद रात को आपने पूछा था,

''रत्नसुंदर, पढ़ाई अच्छी चल रही है?''

''हाँ जी''

''उसी समय पर?''

''हाँ जी''

''आज तुम्हें मैं एक बात कहना चाहता हूँ। तुम्हारे अध्ययन का यही समय निश्चित् करने के पीछे मेरा एक ही उद्देश्य था-तुम गृहस्थों के सम्पर्क में आओ ही नहीं। आखिर तुम्हें संयम को संभालना है ना? इस उम्र में गृहस्थों के सम्पर्क से तुम्हारा संयम कैसे संभलेगा?''

गुरुदेव!

लोकसंपर्क से दूर करके श्लोकसंपर्क में मुझे ओतप्रोत कर देने की आपकी इस दीर्घदृष्टि का अभिनंदन करने हेतु मेरे पास कोई शब्द नहीं है।

गुरुदेव कहते हैं...

ध्यान जैसा हो, मनुष्य उसके अनुसार सुखी अथवा दु:खी होता है, खुशी या ग़म महसूस करता है। अत: सुखी होने का राज़ यही है कि ध्यान मलिन नहीं, निर्मल हो। गौण वस्तु के प्रति नहीं, मुख्य वस्तु के प्रति केन्द्रित हो, जिससे खेद-उद्विग्नता लेश मात्र भी छू न सके।

ऐसे निर्मल शुभ ध्यान से परलोक के लिए भी शुभ कर्म का ही उपार्जन होता है। अत: वहाँ भी सुख-सुविधा प्राप्त होती है। इस प्रकार यहाँ के सुख-दु:ख और परलोक की अच्छी-बुरी स्थिति यहाँ के अच्छे-बुरे ध्यान पर निर्मित होती है। अत: ध्यान जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करता है।

स्थान-जामनगर प्लॉट उपाश्रय। आराधना चल रही थी उपधान तप की। वातावरण में कड़ाके की ठण्ड थी। गुरुदेव, आपका भी गला शीत से ख़राब था। मेरा कंठ भी शीत से पीड़ित था। आपने मुझे प्रवचन देने की आज्ञा सुबह ही दे दी थी।

नौ बजने वाले थे। श्रावक प्रवचन के लिए विनती करने आये। गुरुदेव, आपकी अनुमति लेकर मैं प्रवचन करने गया। प्रवचन पाट (पीठिका) पर बैठा। अभी तो मैंने मंगलाचरण प्रारंभ ही किया था कि एक मुनिवर मेरे पास आकर बोले-

''गुरुदेव बुला रहे हैं।''

मैं स्तब्ध रह गया। अभी तो मैं गुरुदेव की अनुमति लेकर आया हूँ और अचानक ऐसा क्या कारण उपस्थित हुआ होगा कि गुरुदेव मुझे बुला रहे हैं?

कुछ भयमिश्रित मनोभावों के साथ मैं पाट से उतरा। गुरुदेव, जिस कमरे में आप बिराजमान थे उसमें मैं दाखिल हुआ। कुछ सोचूँ उसके पहले आपने मुझे कहा-

''रत्नसुंदर, गला ठीक नहीं है ना? देखो, अभी अभी गर्म चाय आयी है। थोड़ी-सी ग्रहण कर लो, फिर प्रवचन में जाओ। गला अच्छा चलेगा तो प्रवचन बढ़िया होगा।''

गुरुदेव!

आपकी यह करुणा, आपका यह प्रेम, आपका यह वात्सल्य-ये ही तो मेरे संयमजीवन को रसपूर्ण बनाने वाले रसायन थे ना! जीवन आपका तपोमय और मुझ जैसे अज्ञ के प्रति आपका यह असीम प्रेम?

गुरुदेव कहते हैं...

कभी ऐसा हो सकता है कि क्रोध करने से सामने वाला दब जाए और वह बाहर क्रोध न भी दिखाये, पर...उसके दिल में हमारे प्रति जो सद्‌भाव है उसे चोट ज़रूर पहुँचेगी। और कभी सामने वाला दब जाए ऐसा न हो तो उस बेचारे के मन में क्रोध जागृत होगा अथवा बढ़ेगा। इन दोनों ही परिस्थितियों में क्रोध हमारे लिए नुकसान-दायक है। एक बाह्य चीज़ बिगड़ने पर दूसरी बाह्य चीज बिगाड़ने का मूर्ख व्यापार क्यों?

''गुरुदेव, मेरा कोई पत्र आया था?''

''हाँ''

''अठारह पन्ने का?''

''हाँ''

''एक युवक का लिखा हुआ?''

''हाँ, पर तुम्हें ये सब पूछने की क्या आवश्यकता है?''

''गुरुदेव, पत्र लिखने वाला युवक ऊपर के खंड में ही खड़ा है। उसने मुझे कहा कि, 'मेरा रजिस्टर्ड ए.डी. से भेजा हुआ पत्र मिल गया होगा, उसकी रसीद पर आपके गुरुदेव के दस्तखत हैं। आपको वह पत्र मिल तो गया है ना?' बस, इसीलिए आपको यह पूछने हेतु मैं यहाँ आया हूँ।''

''वह पत्र मैंने फाड़ दिया है।''

गुरुदेव, उस वक्त मेरे चेहरे के भावों को देखते ही आपने मुझे पास बिठाकर वात्सल्यभरे शब्दों में कहा था, ''युवक द्वारा तुम्हे लिखे गये उस पत्र में उसने तुम्हारे प्रवचनों की मुक्त मन से प्रशंसा की थी, पर मुझे यह महसूस हुआ कि यह प्रशंसा तुम्हारे विकास को स्थगित भी कर सकती है, क्योंकि प्रशंसा को हज़म कर सके इतनी परिपक्वता तुम में आ गई हो ऐसा मुझे दिखाई नहीं देता। और इसी कारण वह पत्र तुम्हें न देकर मैंने फाड़ दिया है।''

गुरुदेव!

मेरी आत्मा की ऐसी चिन्ता विगत अनंत भवों में किसी ने की होगी या नहीं, इसमें मुझे संदेह है। एक विनती करूँ? आप अभी जहाँ भी हों वहीं से मेरी ऐसी ही चिन्ता करते रहियेगा। तभी मैं मेरी आत्मा को बचा पाऊँगा।

गुरुदेव कहते हैं...

आत्मा की स्वतंत्रता का उपयोग मलिन भावों को रोकने एवं शुभ भावों को विकसित करने में ही करना चाहिए।

''गुरुदेव ! दो मिनट''

रथयात्रा के वरघोड़े में जाने के लिए गुरुदेव, आप आसन छोड़कर खड़े हो गये हैं। कपड़ा आपने ओढ़ लिया है। कँधे पर कमली भी डाल ली है और एक मुनिभगवंत को दंडा ले आने हेतु सूचित भी कर दिया है।

''क्यों ? क्या हुआ ?''

''आपने कपड़ा भी अच्छी तरह नहीं धारण किया और कँधे पर कमली भी ठीक तरह से नहीं डाली ! हम रथयात्रा के वरघोड़े में जा रहे हैं। आप तृतीय पद (आचार्य पद) पर विराजमान हो चुके हैं। सभी की दृष्टि आप पर होगी और आप ऐसे अस्तव्यस्त ? कैसा लगेगा ?''

''रत्नसुंदर, एक बात सदा स्मृतिपथ में रखना। जीवन में जो सादगी को अपनाता है उसका साधुजीवन बहुत सुंदर बना रहता है। भोजन के द्रव्य सादे, उपकरण सादे, चालचलन सादा, तमाम वस्तुएँ सादी। संक्षिप्त में, जीवन यदि सादगीभरा तो संयमजीवन की सुरक्षा निश्चित्। काल अत्यन्त विषम है। पैसे लेकर घूमने वाला बनिया किसी की नज़र में न आये तभी तक सुरक्षित रह सकता है। इसी तरह, दूसरों की दृष्टि हम पर न पड़े, हमारा संयमजीवन तब तक ही सुरक्षित है।''

गुरुदेव !

संयमजीवन और संयम के परिणाम सुरक्षित रखने के लिए आप जिस हद तक जागृत और सावधान थे उस जागृति और सावधानी का मूल्य समझने की दृष्टि भी हमारे पास कहाँ है भला ?

गुरुदेव कहते हैं...

छोटे-बड़े पापों को लेकर अंतर में भारी पछतावा-पीड़ा-व्याकुलता प्रकट होनी चाहिए। वह भी ऐसी कि वह ज़रा भी चैन न पड़ने दे, नज़रों के सामने उन पापों के कडु विपाकरुप दुर्गति के दुःखभरे जन्म दिखाई देने लगे और परिणामस्वरुप उन पापों का प्रतिपल भय लगा रहे तथा उन पापों के प्रति पापकारी स्वयं की आत्मा के प्रति घृणा-तिरस्कार बना रहे।

''रत्नसुंदर ! प्रवचन तो तुम करते ही हो, अब थोड़ा लिखना भी शुरु कर दो।'' पालनपुर-खोड़ा लीमड़ा के उपाश्रय का वह स्थान था। समय था लगभग दोपहर के २:३० बजे का।

''गुरुदेव ! बोलना अलग बात है और लिखना अलग। बोलने में विषयांतर चल सकता है, पर लिखने में विषयांतर कैसे चल सकता है ? और दूसरी बात, आप तो जानते ही हैं कि आज भी मैं किसी को एक पत्र भी व्यवस्थित रुप से नहीं लिख पाता। ऐसी स्थिति में मैं कुछ लिखना शुरुँ करूँ यह मेरी क्षमता के बाहर है।''

मेरे इस नादान जवाब को सुनकर गुरुदेव, आप तुरंत बोले- ''रत्नसुंदर, तुम्हें मेरे वचन पर विश्वास नहीं है ?''

और एक पल का भी विलम्ब किये बिना मैंने आपकी गोद में अपना सर रख दिया था। आपने सूरिमंत्र के जाप का वासक्षेप मेरे मस्तक पर डालते समय जो हाथ फेरा था उस स्पर्श में वात्सल्य का कैसा महासागर उमड़ पड़ा था वह मेरे स्मृतिपथ में आज भी स्थिर है । बस, उसी क्षण से प्रारंभ हुई थी मेरी लेखनयात्रा, जो आज तक अखण्डित रुप से जारी है।

गुरुदेव !

हृदय में यह श्रद्धा नितांत स्थिर हो गई है कि गुरु शिष्य को केवल आज्ञा ही नहीं देते, आज्ञा के साथ आज्ञापालन का बल भी देते हैं। इसके बग़ैर मेरे जीवन में इस चमत्कार का सर्जन होता ही कैसे ?

गुरुदेव कहते हैं...

हृदय के भावों को निर्मल करने के तीन लाभ–

१. अशुभ कर्मबंधन में रुकावट ।

२. शुभ कर्मों का उपार्जन ।

३. पूर्व बंधित पापकर्मों का क्षय ।

समस्त संघ में आज आनंद ही आनंद था। उसमें भी विशेष आनंद तो हम साधुओं को था। केवल पाँच–सात दिन बाद आपका वर्धमान तप की १०८ वीं ओली का पारना था। कितना प्रबल सत्व प्रकट करने के बाद आप इस मंज़िल के निकट पहुँच पाये थे। जीवन के लगभग ६००० दिन आपने इस तप में बिताये थे। इस अवधि में कभी आपको बुखार भी आया तो कभी पिलिया भी हो गया, कभी तो आपको यह तप बीच में ही छोड़ देना पड़ा था तो कभी आपको इस तप की पूर्णाहुति खींचकर भी करनी पड़ी थी। परन्तु, वास्तविकता यह थी कि सभी संघर्षों से पार उतरकर आप मंज़िल के बिल्कुल निकट आ पहुँचे थे।

परन्तु, न जाने क्यों आपके चेहरे पर इन दिनों आनंद नहीं, बल्कि व्यथा थी ? एक रात सहज ही मैंने आपसे इसका कारण पूछा। आपका जवाब था–

'रत्नसुंदर, विगई में जाने का आनंद कैसा ? अनंत अनंत काल से जिन विगइयों के सेवन ने आत्मा को विकृतियों का शिकार बनाकर दुर्गतियों में ढकेलने का ही काम किया है वह विगईसेवन निकट आ रहा है, उसमें खुशी ? कदापि नहीं।'

गुरुदेव !

महाविदेह में जाने की बजाय क्या आप हम जैसों के लिए उदाहरणरुप बनने के लिए ही भरतक्षेत्र में अवतरित हो गये थे ?

गुरुदेव कहते हैं...

जड़ जगत् के विषय में जितना ज़्यादा जानने का प्रयास करोगे उतना ज़्यादा रोना पड़ेगा और जितना ज़्यादा देखने का प्रयास करोगे उतना ज़्यादा भटकना पड़ेगा।

जबकि,

जीव जगत् के विषय में जितना ज्यादा जानते रहोगे उतनी निर्मलता बढ़ती जायेगी और जितना ज़्यादा इस जगत् का गुणवैभव देखोगे उतनी मुक्ति निकट आयेगी।

तय कर लो, आँख और मन को कहाँ रोकना है ? जड़जगत् पर या जीवजगत् पर ?

ऑपरेशन थिएटर से बाहर आने को अभी दो ही घण्टे हुए थे। गुरुदेव, आप के गले के भीतरी हिस्से में बढ़ रहे फोड़े का अभी–अभी ऑपरेशन हुआ है। आप पूर्णरुप से होश में हैं। ऑपरेशन करने वाले डॉक्टर आपके समीप ही खड़े हैं। उन्होंने आप से ज़ोर देकर एक अनुरोध किया है कि– ''अभी चार घण्टे तक आप एक भी शब्द नहीं बोलेंगे। जो भी कहना हो वह इशारों में ही कहेंगे।''

''साहबजी भोजन में क्या ले सकते हैं ?''

''चाय दी जा सकती है।''

इतना कहकर डॉक्टर तो चले गये, पर गुरुदेव, दोपहर के एक बजे आपकी सेवा में उपस्थित मुनिवर ने जब आपसे पूछा कि ''चाय ले आऊँ ?'' तब डॉक्टर की मौन रहने की सलाह के बावजूद आपने जो जवाब दिया था उसे सुनने का सद्भाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ था।

''अभी दोपहर को एक बजे निर्दोष चाय तो किसी के घर नहीं मिलेगी। तीन बजे कहीं जाकर आना, कदाचित् उस समय कहीं निर्दोष चाय मिल जाए।''

गुरुदेव !

शास्त्रपंक्तियों को आपने केवल कंठस्थ ही नहीं किया था, बल्कि जीवनस्थ भी किया था। इसके बग़ैर ऐसी अस्वस्थता में भी निर्दोष चाय का आग्रह रखने की सद्बुद्धि कैसे सुझती ?

गुरुदेव कहते हैं...

जैसे मृत्यु के लिए कोई अनवसर नहीं है, वैसे धर्म के लिए कोई अकाल नहीं है। मृत्यु यदि किसी भी समय आ सकती है तो मृत्यु का सामना करने वाले और मृत्यु को सुधारने वाले धर्म के लिए कोई भी अवसर उचित क्यों नहीं है ? यह बात सच है कि अभी मृत्यु नहीं आई, पर कौन कह सकता है कि इसके बाद जो भी पल आने वाला है उसमें मृत्यु आयेगी ही नहीं ?

''आज रात एक साथ दो लाभ हुए।''

रात हमने एक स्कूल में बिताई और सुबह विहार था। उस समय वंदन हेतु एकत्रित हुए तीन-चार मुनियों के समक्ष जब आपने उपरोक्त बात कही तब सहसा मैं पूछ बैठा,

''कौनसे दो लाभ ?''

''एक लाभ यह कि पूरी रात चन्द्र का प्रकाश स्कूल के कमरे में आता रहा और इसलिए प्रभु के वचनों पर मेरा मनोचिन्तन लिखने में बहुत आनन्द आया।''

''और दूसरा लाभ ?''

''ये बालमुनि हैं ना ? ख़ुद के संथारे से लोटते लोटते वे मेरे संथारे में आ गये। आचार्य के संथारे में सोने को मिला फिर तो पूछना ही क्या ? पूरी रात मेरे संथारे में ही सोते रहे। सुबह जब उन्हें प्रतिक्रमण के लिए उठाया तभी उठे। पूरी रात मैं बैठा रहा मेरे संथारे के बाहर और ये बालमुनि सोये रहे मेरे संथारे में। बालमुनि का ऐसा लाभ मुझे मिला, यह मेरा पुण्य ही है ना ? कई वर्षों के बाद एक ही रात में मुझे ये दो दो लाभ मिले होंगे !''

गुरुदेव !

आपके इस निर्मल वात्सल्य के अनुभव के आगे किसी भी प्रकार के खालीपन के टिकने की संभावना ही कहाँ है ? सच कहूँ, आपके ऐसे वात्सल्य के सागर में जिसको भी डूबने का सौभाग्य मिलता है, वासना, वेदना, विलाप और व्यथा उससे दूर ही रहते हैं।

गुरुदेव कहते हैं...

आज धर्म करने से और पाप छोड़ने से इन्कार करने वाले मन से इतना ही पूछ लो कि धर्म यदि आज नहीं करोगे तो कब करोगे ? और, पाप यदि आज नहीं छोड़ोगे तो कब छोड़ोगे ?

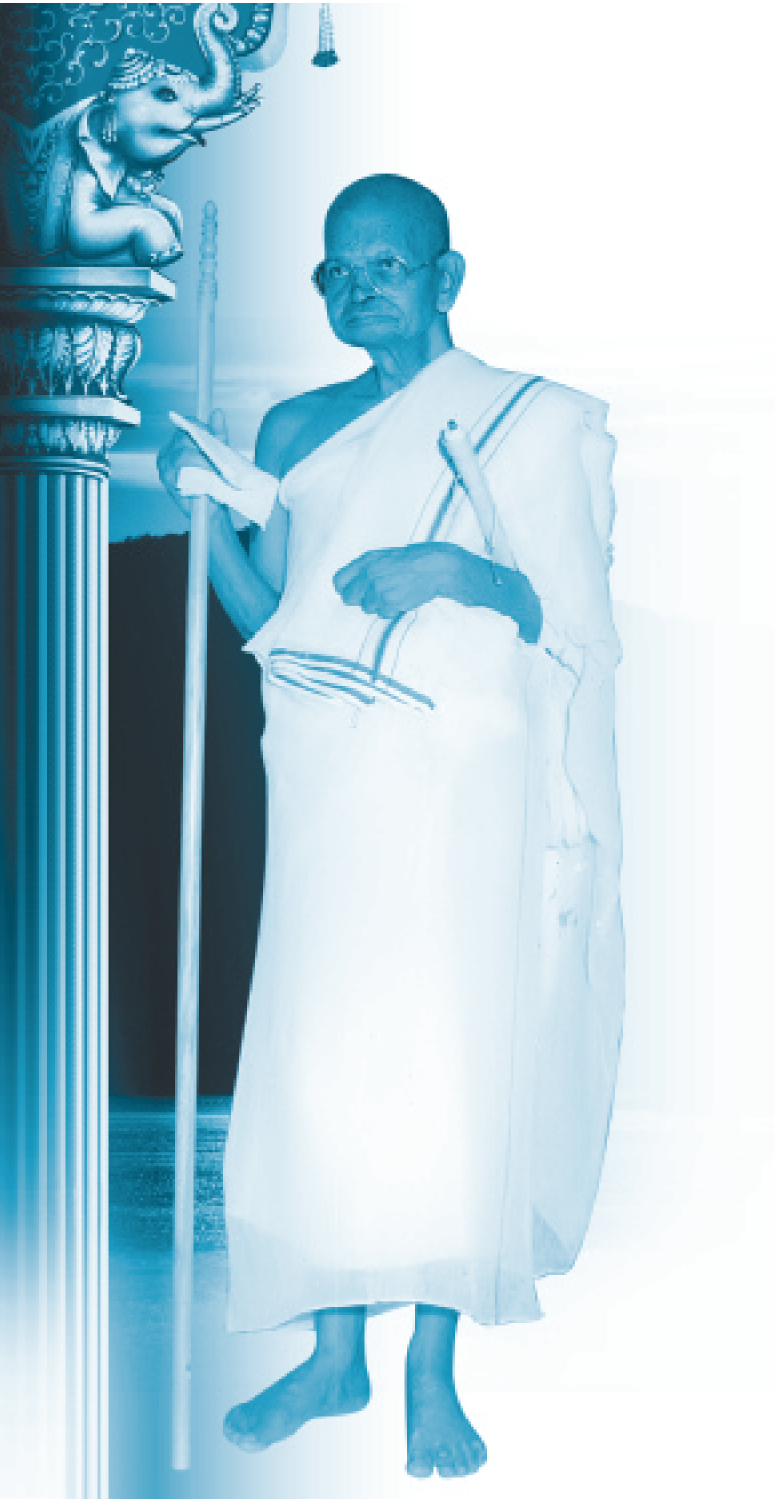

''मेरे आसन पर पड़े अख़बार को किसने हाथ लगाया ? बुलाओ सब साधुओं को यहाँ मेरे पास।''

जलगाँव के चातुर्मास के दौरान एक दिन प्रवचन समाप्ति के पश्चात् आपको ऐसा लगा कि आपकी अनुपस्थिति में किसी ने अवश्य अख़बार पढ़ा है। आप क्रोधित हो उठे और पलभर में तो हम सभी साधु आपके समक्ष उपस्थित हो गये।

''अख़बार को किसने हाथ लगाया ?''

यह बोलते वक्त आपका उग्र चेहरा देखकर हम सब काँप उठे थे, पर सबसे ज़्यादा विषम स्थिति मेरी थी, क्योंकि अख़बार पढ़ने का गुनाह मैंने ही किया था।

''गुरुदेव, मैं गुनहगार हूँ।''

''मेरी अनुपस्थिति में मेरे आसन को लाइब्रेरी बनाया ? तुम्हें अख़बार पढ़ने की इज़ाजत किसने दी ? क्या पढ़ना है अख़बार में ? स्वाध्याय में डूब जाने की उम्र में अख़बार पढ़ते हो ? ख़बरदार, आज के बाद कभी अख़बार को हाथ लगाया तो ! संयमजीवन ख़त्म हो जायेगा।''

गुरुदेव !

११ वर्ष के संयमजीवन के पर्याय के बाद भी मुझे अख़बार के वाचन से दूर रखकर वास्तव में आपश्री ने मेरे भावप्राणों को सुरक्षित कर दिया था। आपके इस उपकार का वर्णन करने के लिए मेरे पास कोई शब्द नहीं है।

गुरुदेव कहते हैं...

कर्म तो ''चैक'' के समान हैं। बैंक में ''चैक'' जमा करने पर आपको रकम तो मिल जाती है पर बाद में वह ''चैक'' केन्सल हो जाता है।

शुभ या अशुभकर्म जब उदित होते हैं तब वे आपको सुख-दुःख देते हैं, पर वह देने के बाद वे शुभ या अशुभ कर्म शेष नहीं रहते, समाप्त हो जाते हैं।

आज सुबह, पन्द्रह किलोमीटर के विहार में भी मैं थक गया था, और शाम को आठ किलोमीटर का विहार फिर हुआ। शरीर इस हद तक श्रमित हो चुका था कि कब प्रतिक्रमण पूरा हो और कब मैं सो जाऊँ ?

आख़िर प्रतिक्रमण पूरा हुआ। विश्राम के लिए मैं संथारा बिछा रहा था और गुरुदेव, आपने यह देख लिया। आपको ध्यान में आ गया कि मैं सोने की तैयारी में ही हूँ और आपने मुझे आवाज़ लगाई,

''रत्नसुंदर !''

सच कहूँ ? आपकी यह आवाज़ सुनकर उस पल तो मन में यह विचार आया कि मैं आपसे कह दूँ - ''कल सुबह ही मैं आपसे मिलूँगा।'' पर मन की यह बात मन में ही रखकर मैं बेमन से आपके पास पहुँचा।

''रत्नसुंदर, प्रतिदिन रात को चलने वाला तुम्हारा विशेषावश्यक भाष्य का पाठ काफी समय से मैंने नहीं सुना है। मेरी इच्छा है कि आज तुम्हारा यह पाठ मैं सुनूँ। बोलो, सुनाओगे ना ?'' और सचमुच गुरुदेव, उस वक्त आपने ख़ुदने मेरा पाठ आधे घण्टे तक सुना।

गुरुदेव !

आश्रितों को प्रमादसेवन से दूर रखने के लिए आप विविध प्रकार की जो युक्तियाँ आज़माते थे उनसे ऐसा लगता था कि सचमुच आश्रितों के लिए ''भवसागरतरणसेतूबन्धकल्पानाम्'' ही थे आप।

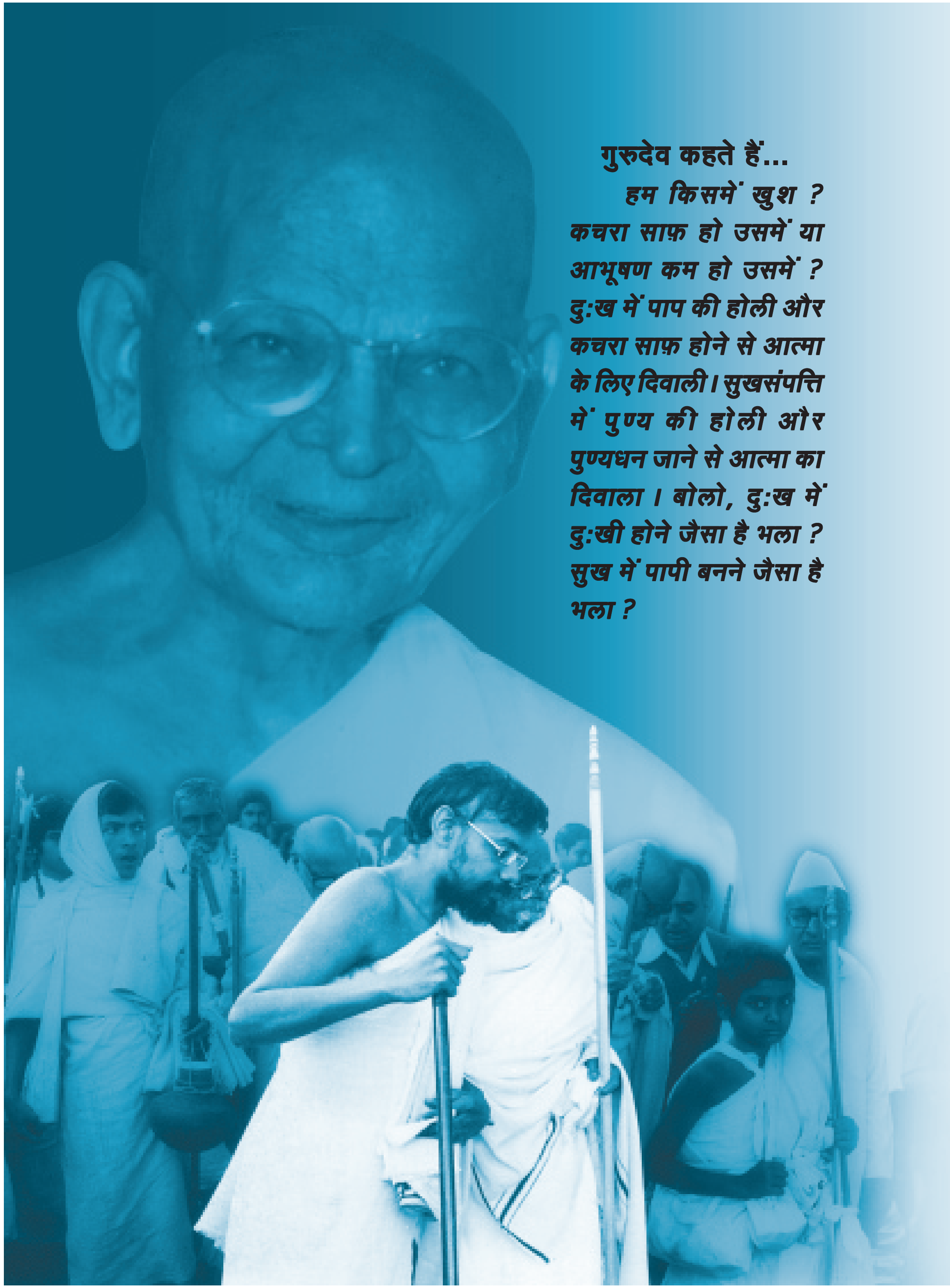

गुरुदेव कहते हैं...

हम किसमें खुश ? कचरा साफ़ हो उसमें या आभूषण कम हो उसमें ? दु:ख में पाप की होली और कचरा साफ़ होने से आत्मा के लिए दिवाली। सुखसंपत्ति में पुण्य की होली और पुण्यधन जाने से आत्मा का दिवाला। बोलो, दु:ख में दु:खी होने जैसा है भला ? सुख में पापी बनने जैसा है भला ?

तिथि थी चतुर्दशी। चातुर्मास था सुरत में। गुरुदेव, हम सब दर्शन करने के लिए बड़ाचौटा के जिनालय की ओर जा रहे थे।

अचानक पता नहीं क्या हुआ ? आप खड़े रह गये। मैं आपके पीछे चल रहा था। आपके निकट आया। आपने कहा,

''रत्नसुंदर ! आहारसंज्ञा को तोड़ना है या रहने देना है।''

''तोड़ना ही है''

''सचमुच ?''

''हाँ''

''तो सुनो। यहाँ बड़ाचौटा के उपाश्रय में चातुर्मास हेतु विराजमान पूज्यपाद आचार्य भगवन्त कुमुदचंद्रसूरीश्वरजी महाराज हैं ना, संभवतया वर्तमान में उनके समान तपस्वी जिनशासन में और कोई नहीं है। दर्शन उपरांत हम उनके पास ही जा रहे हैं। हम सबको अपने मस्तक पर डलवाना है उनके वरद हस्तों से वासक्षेप। अपने पुरुषार्थ से भी जिस आहारसंज्ञा को हम नहीं तोड़ सकेंगे वह आहारसंज्ञा ऐसे वंदनीय तपस्वी आचार्य भगवन्त के आशीर्वाद से स्वत: टूटने लगेगी।''

गुरुदेव !

आपश्री की इस गुणानुरागिता को किन शब्दों में वंदन करूँ ? आप स्वयं तपस्वी और फिर भी अन्य समुदाय के तपस्वी पूज्यश्री के पास आशीर्वाद लेने की आपश्री की यह उदात्त वृत्ति ? वंदन हैं आपकी उदारवृत्ति को।

गुरुदेव कहते हैं...

हृदय तो हमारा ही है ना ? उसमें कैसी संवेदनाएँ पैदा करनी अथवा कैसी नहीं करनी, यह जब हम पर ही निर्भर है तो क्यों न शुभ संवेदनाओं को पैदा करें और अशुभ संवेदनाओं को दबाते रहें ?

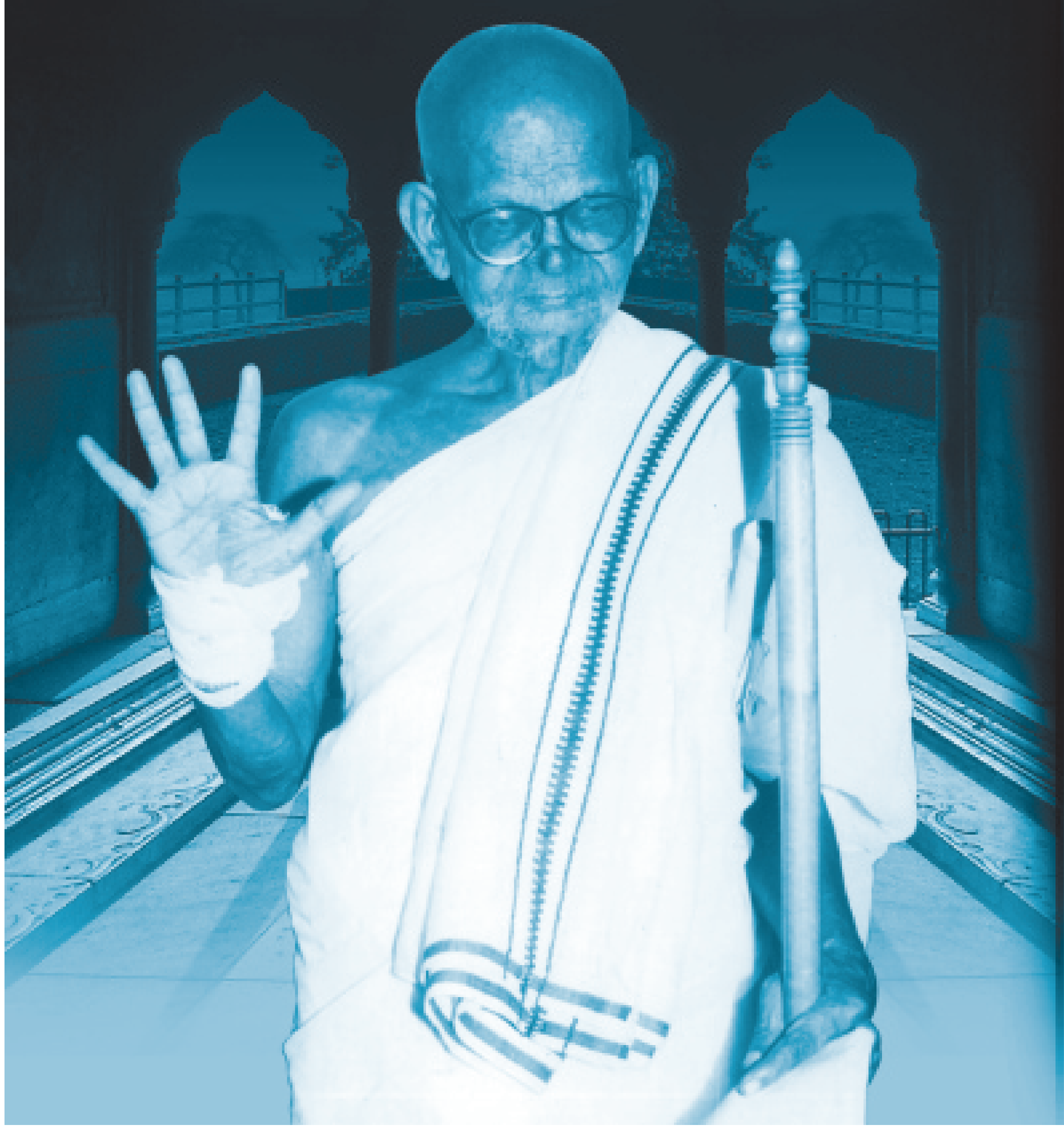

स्थल था खंभात ओसवाल जैन उपाश्रय। वहाँ अंजनशलाका महोत्सव चल रहा था। आज प्रभु के जन्मकल्याणक के निमित्त ५६ दिक्कुमारियों का मंचीय कार्यक्रम था और गुरुदेव, प्रात:काल में वन्दन हेतु एकत्रित साधुओं के समक्ष आपने जो उद्‌बोधन दिया था वह आज भी मुझे अच्छी तरह याद है।

''देखो, आज मंच पर ५६ दिक्कुमारियों का कार्यक्रम होने वाला है। वे दिक्कुमारियाँ १० वर्ष से अधिक उम्र की नहीं होनी चाहिए इस संबंध में मैंने आयोजकों को स्पष्ट हिदायत पहले ही दे दी है, फिर भी मेरी स्पष्ट इच्छा है कि तुम सब यहीं उपाश्रय में रहकर स्वाध्यायादि करो। मैं दो-चार वृद्ध साधुओं के साथ कार्यक्रम में जाकर लौट आऊँगा ।

दिक्कुमारिकाएँ भले ही छोटी उम्र की होंगी, फिर भी उनका स्त्रीशरीर है। हम संयमी उनके दर्शन से बचते रहें इसी में हमारा आत्महित सुरक्षित है। यह प्रभुभक्ति का प्रसंग है इसलिए मैं तुम्हें न आने की आज्ञा तो नहीं देता, पर मेरी यह जो इच्छा थी वह तुम सबको बताना चाहता था।''

गुरुदेव !

हम सब की पवित्रता की चिन्ता करने वाले आपने अपने हृदय को किस हद तक पवित्र बनाये रखा होगा इसकी कल्पना करते करते आज भी आँखों में आँसू छलक आते हैं। आपके जैसे शिरछत्र को पाकर हम सभी धन्य हो गये हैं।

गुरुदेव कहते हैं...

मानवजीवन योग के लिए है भोग के लिए नहीं। यह जीवन पाकर योग की साधना करे वह भाग्यशाली और भोग में ही डूबा रहे वह अभागी।

मैं उन वर्षों में आपश्री की आज्ञा से गुजरात में रुक गया था और आपश्री पधारे थे दक्षिण में। इरोड़ में आपश्री की पावन निश्रा में हुई भव्य अंजनशलाका के समाचार सुनने के बाद गुरुदेव, मैंने आपश्री को पत्र में लिखा था कि ''आपश्री की पावन निश्रा में हुई अभूतपूर्व अंजनशलाका के समाचार सुनकर अत्यन्त आनन्द हुआ।''

मेरे इस पत्र के प्रत्युत्तर में आपने मुझे डाँटते हुए लिखा था– ''तुम्हारे पास शब्दों का अच्छा खासा खजाना लगता है। ''अभूतपूर्व'' शब्द लिखते हुए तुम्हें शर्म नहीं आई ? ''अभूतपूर्व'' शब्द का अर्थ क्या तुम्हारे ध्यान में है ? भूतकाल में कभी न हुआ हो उसे कहा जाता है ''अभूतपूर्व''। क्या भूतकाल में इस क्षेत्र में ऐसी अंजनशलाका कभी नहीं हुई होगी ? मैंने और तुमने भूतकाल कितना देखा है ? आज तक भूतकाल कितना गुज़र चुका है इसका तुम्हें पता है ?

ख़ैर, आज के बाद पत्र लिखने में शब्दों का प्रयोग करने से पहले विवेक का अवश्य उपयोग करना।''

गुरुदेव !

आपकी इस सूक्ष्मबुद्धि और शुद्धबुद्धि पर उस समय मैं फिदा हो गया था। वास्तव में आपके ज्ञानावरण के तीव्र क्षयोपशम को मोहनीय के क्षयोपशम का ज़बरदस्त सहारा था। इसके बिना ऐसी दीर्घदृष्टि होने की संभावना ही कहाँ होती ?

गुरुदेव कहते हैं...

दुष्कृत के तीव्र पश्चात्ताप में यदि दुष्कृत के बीज को जला देने की तीव्र शक्ति है तो सुकृतों की जी भरकर की जाने वाली अनुमोदना में सुकृत के बीज को सुरक्षित रख लेने की मंगल शक्ति है । दुष्कृत को सुरक्षित करने वाली दुर्बुद्धि से मुक्त हो जाना चाहते हो तथा सुकृत को जीवन्त रखने वाली सद्‌बुद्धि के मालिक बने रहना चाहते हो तो पश्चात्ताप-अनुमोदना के स्वामी बनकर ही रहो ।

घाटकोपर नवरोजी लेन का उपाश्रय-समय लगभग शाम के पाँच बजे का, और गुरुदेव, आपको आवश्यकता पड़ी आपके एक उपकरण की जिसका आप प्रतिदिन उपयोग करते थे ।

आपकी सेवा में नियुक्त मुनिवर ने वह उपकरण लाकर आपको दे तो दिया, परन्तु आपने सतर्क दृष्टि से तुरन्त परख लिया कि यह उपकरण वह नहीं है जिसका उपयोग आप प्रतिदिन करते हैं । आपने पूछा,

''पुराना उपकरण कहाँ है ?''

''उसको दुरुस्त करने के लिए एक गृहस्थ को दिया है ।''

''कब दिया ?''

''कल शाम को ।''

''आज का प्रतिलेखन ?''

''रह गया है ।''

''कल मुझे उपवास है ।''

और गुरुदेव, हमारे लाख समझाने पर भी आप टस से मस नहीं हुए । दूसरे दिन घाटकोपर से सीधा मुलुंड की ओर विहार था, फिर भी आप उपवास करके ही रहे ।

गुरुदेव !

आज्ञापालन के लिए इस हद तक आपका आग्रह देखने के बाद हमें नहीं लगता कि यह संसार आपको दीर्घ समय तक यहाँ रहने दे ।

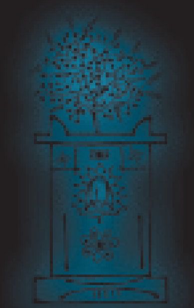

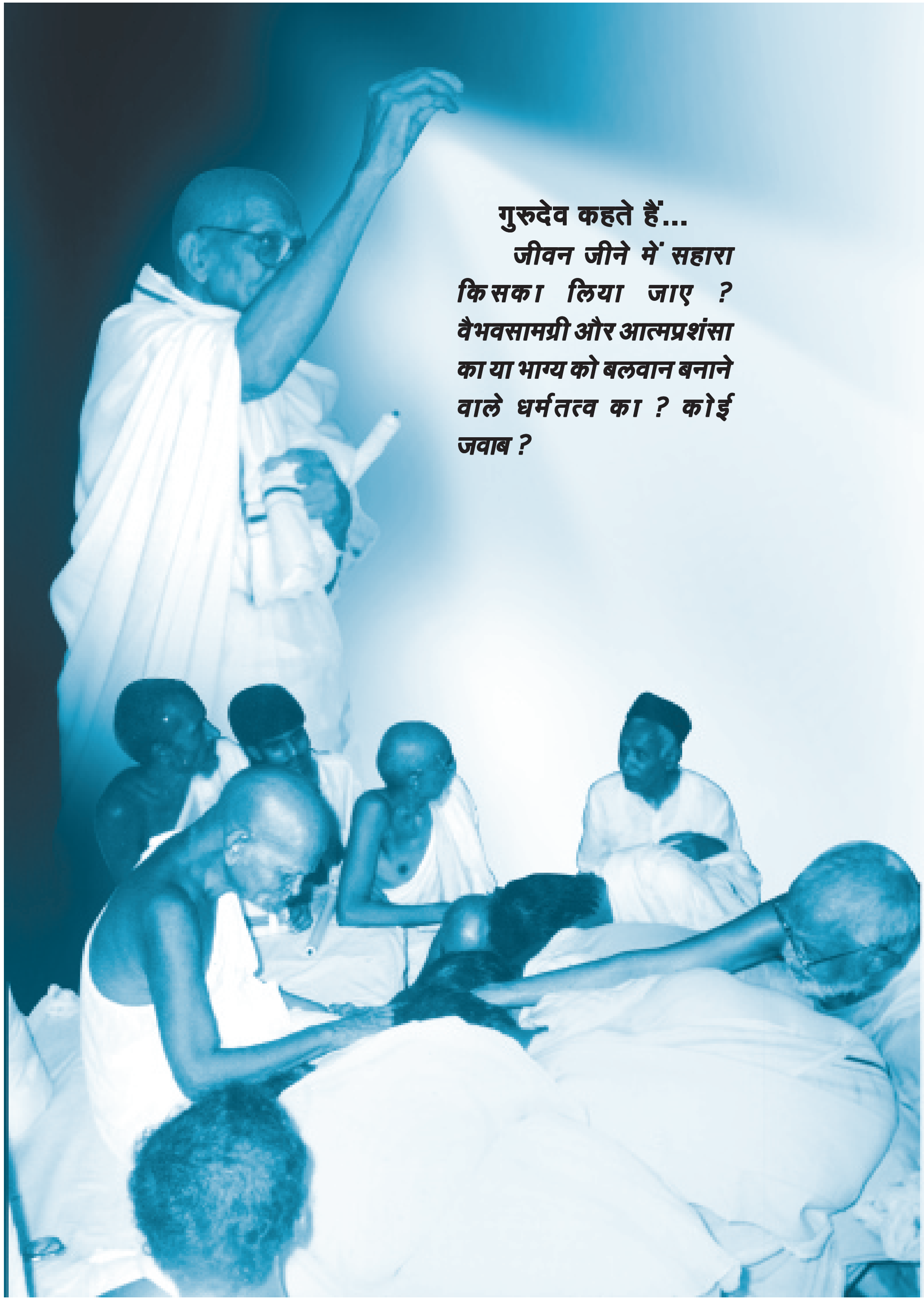

गुरुदेव कहते हैं...

जीवन जीने में सहारा किसका लिया जाए ? वैभवसामग्री और आत्मप्रशंसा का या भाग्य को बलवान बनाने वाले धर्मतत्व का ? कोई जवाब ?

शाम को आज लम्बा विहार था तो सुबह का विहार भी लम्बा ही था। गुरुदेव, आप सहित हम सभी के शरीर भारी श्रमित थे। शाम को हम सब वंदन हेतु जब आपश्री के समक्ष उपस्थित हुए तब आपश्री ने हम सब को कहा भी कि–

''आज अपना विहार बहुत लम्बा हो गया है। जो भी थक गये हों और बैठे बैठे प्रतिक्रमण करना चाहते हों उनको मेरी अनुमति है...''

परन्तु,

प्रतिक्रमण शुरु हो उसके पहले गुरुदेव, आपने मुझे बुलाया, ''जरा कमली ओढ़कर आना।''

मैं कमली ओढ़कर गुरुदेव, आपके पास आया और आपने भी कमली ओढ़ी। मैं सोच में पड़ गया। ''अभी कहाँ जाना होगा ?'' मैं कुछ बोलूँ उसके पहले आपने कहा, ''देखो, आज उजाली अष्टमी है। चन्द्र का प्रकाश कहाँ मिलेगा यह हम ज़रा देख लें। रात को लिखने के लिए मैं सीधा वहीं पहुँच जाऊँ ना ! वैसे भी, उस जगह का अभी से ख़याल आ जाए तो काजा आदि लेने की विधि में भी आसानी रहेगी।''

गुरुदेव !

जन्मों–जन्म आत्मा के लिए ''अधिकरण'' रुप बनने वाले शरीर को आपने जिस कुशलता से ''उपकरण'' रुप बना दिया था उसे देखने के पश्चात् कर्मसत्ता ने भी कदाचित् निर्णय कर लिया होगा कि आपको अब अशरीरी अवस्था का उपहार देना ही है।

गुरुदेव कहते हैं...

मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं–

१. जड़–संपत्ति में ही सुरक्षितता का अनुभव करने वाले–मूढ़ मनुष्य।

२. संपत्ति के कारणभूत पुण्य में सुरक्षितता का अनुभव करने वाले–कुछ समझदार मनुष्य।

३. देव–गुरु–धर्म की शरण में सुरक्षितता का अनुभव करने वाले–वास्तव में विवेकी मनुष्य।

अवसर था तपोवन (नवसारी) में अंजनशलाका महोत्सव का। शताधिक पदस्थ–पूज्यों की उपस्थिति में महोत्सव अत्यन्त भव्यता से मनाया जा रहा था।

गुरुदेव, उन दिनों जब भी समय मिलता, आपकी वाचना चलती रहती थी। जीवनभर संयम की विशुद्धि हेतु जागृत एवं प्रयत्नशील रहने वाले आप, उन वाचनाओं में जो प्रभुवचन प्रस्तुत करते थे उन्हें सुनकर हम सभी आनन्दित हो जाते थे।

एक दिन संपूर्ण वाचना ''रात्रिस्वाध्याय'' की महत्ता को केन्द्र में रखकर हुई। जबसे मुमुक्षु अवस्था में मैं आपके साथ रहा, मैंने देखा है कि आपश्री रात्रिस्वाध्याय के लिए कितने आग्रही रहे हैं।

अचानक वाचना के दौरान आपके मुख से शब्द निकल पड़े– ''रत्नसुंदर अब सयाना हो गया है ना! इसलिए उसने रात्रि–स्वाध्याय छोड़ दिया है। वरना, विशेषावश्यक भाष्य का उसका स्वाध्याय सुनकर तो मैं स्वयं आनन्दित हो जाता था। पर लगता है, अब वे दिन गये।''

गुरुदेव !

आपके मुख से निकले इन शब्दों को सुनकर मैं इतना शर्मिंदा नहीं हुआ था जितना आनन्दित हो गया था। कितना पुण्य रहा होगा मेरा जो सौ से अधिक पूज्यों के बीच आपके ये शब्द मुझे सुनने को मिले थे।

गुरुदेव कहते हैं...

1. ***पुण्य तो धोखेबाज़ है, कब धोखा दे जाए यह कहा नहीं जा सकता।***
2. ***पुण्य के होने मात्र से नये पुण्य का उपार्जन नहीं होता, पुण्य के माल को धर्म में लगाओ तो ही नये पुण्य की वृद्धि होती है।***
3. ***पुण्य का स्वभाव तो उदय में आकर बिदा हो जाना है ! ऐसे पुण्य में ही 'सुरक्षितता' का अनुभव करना उचित नहीं है।***

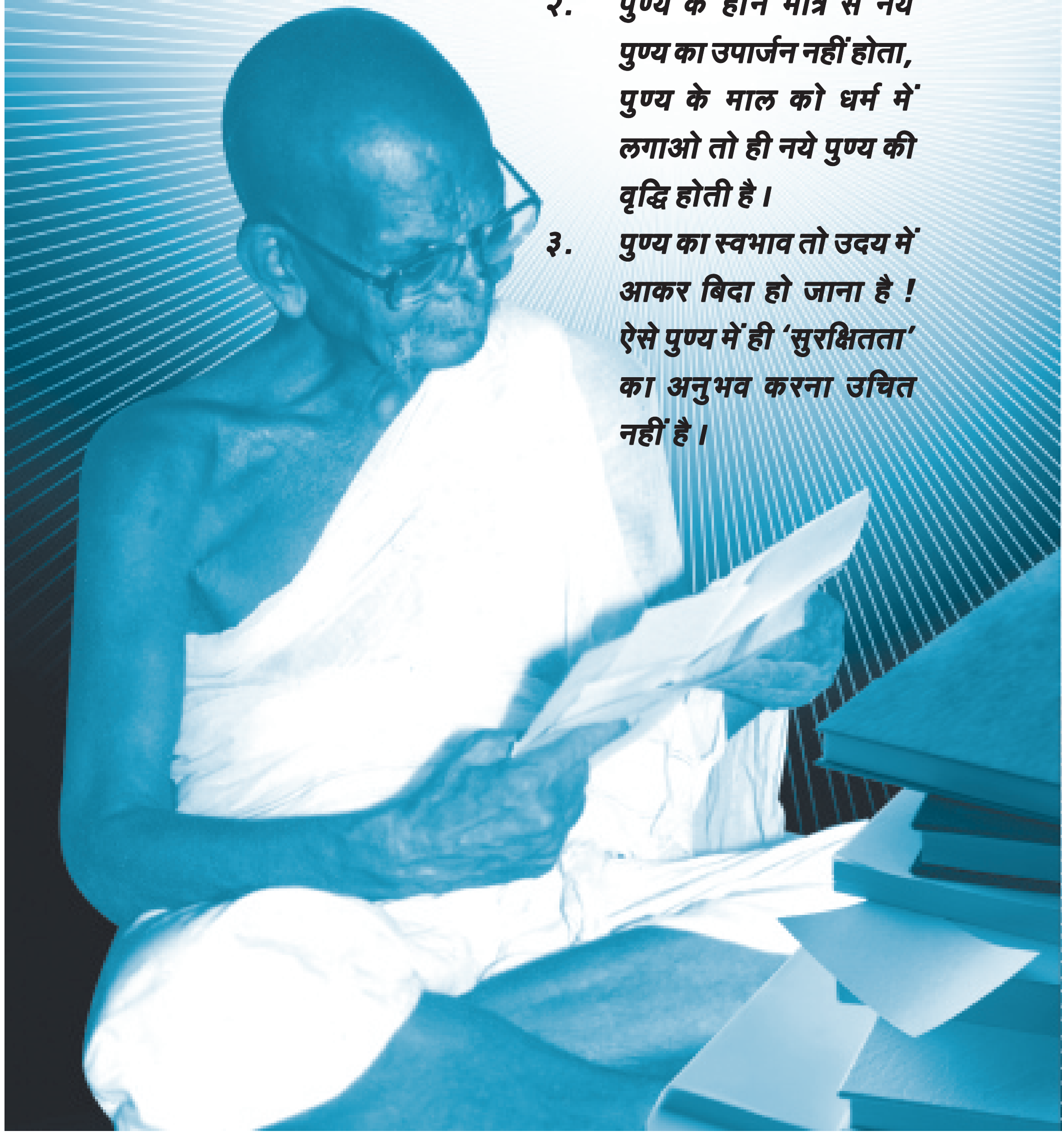

आज वाचना में आप अत्यन्त प्रफुल्लित थे। चालू वाचना में आपने हमारे समक्ष एक प्रश्न रखा–

''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'', इस पंक्ति का अर्थ बताइए। हम सबको समझ में आ ही गया था कि हम जो भी अर्थ करेंगे, आज गुरुदेव उससे कुछ अलग ही अर्थ बतायेंगे। वरना, ऐसा सरल प्रश्न गुरुदेव हमें क्यों पूछते ! फिर भी एक मुनिवर ने जवाब दिया, ''शरीर धर्म का प्रथम (मुख्य) साधन है।''

गुरुदेव, यह जवाब सुनकर आप मुस्कुराते हुए बस इतना ही बोले, ''आद्यं शरीरं खलु धर्मसाधनम्'', इस प्रकार यदि पंक्ति की रचना की जाए तो इसका अर्थ यह होता है कि ''प्रथम शरीर अर्थात् शरीर की प्रथम युवावस्था ही धर्म का साधन है''। और बात भी सच्ची ही है ना ? साधनाओं में यदि गति बढ़ानी है, तपस्या के क्षेत्र में अभिनव शिखर फतह करने हैं, ख़ून–पानी एक करके स्वाध्याय कर लेना है तो यह सब युवावस्था में ही संभव है। आप सब अभी युवावस्था में ही हो ना ? सत्व प्रकट कर साधनाएँ कर ही लेना !''

गुरुदेव !

शास्त्रपंक्तियों के गूढ़ रहस्यों को प्रकट करने वाली आपकी निर्मल प्रज्ञा ने ही तो आपके वरद हस्तों से ''परमतेज'' जैसे नज़राने स्वरुप ग्रंथ का सर्जन करवाया था ना !

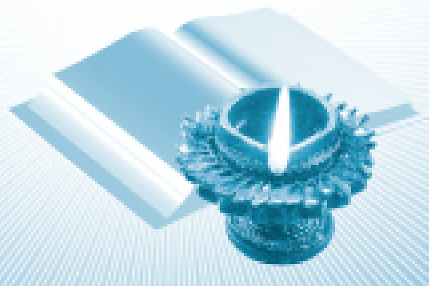

गुरुदेव कहते हैं...

''विनय'' को आत्मसात् करने में कुल छ: प्रकार के लाभ हैं-

१. जिनाज्ञापालन की इच्छा का शुभभाव।

२. नम्रता का शुभभाव।

३. उपकारियों के उपकारों के प्रति कृतज्ञभाव।

४. गुणवानों के गुणों का अनुराग, यह शुभभाव।

५. कर्मक्षय की इच्छा का शुभभाव।

६. ''धर्म की जड़ विनय है'' अत: अन्य धर्म को लाने का शुभभाव।

ऐसे शुभभावों का ख़जानारुप 'विनय धर्म' अगणित कर्मों एवं अन्य अनेक गुणों का लाभदाता है।

''एक मामले में मैं मार खा गया हूँ।''

गुरुदेव, आज आप आश्चर्यचकित कर देने वाले ''मूड'' में थे। रात को हम चार-पाँच साधु आपके पास बैठे थे। आपने बात शुरु की थी।

''क्यों, क्या हुआ ?'', हमने पूछा।

''आज ऐसा लग रहा है कि वर्धमान तप की १०० ओलियाँ पूर्ण करने के बाद मुझे १०८ वीं ओली तक नहीं पहुँचना चाहिए था।''

''पर क्यों ?''

''क्योंकि अब १०९ वीं ओली पूर्ण कर सकूँ ऐसा स्वास्थ्य नहीं है। यदि १०० वीं ओली पूर्ण करने के बाद मैंने नये सिरे से पाया डाला होता ना, तो छोटी-छोटी कितनी ही ओलियाँ मैंने आसानी से पूर्ण कर ली होती!

१०१ से १०८ ओली तक मैं पहुँचा तो सही, पर उसमें कुल मिलाकर आयंबिल हुए लगभग ८००, जबकि पाया डालकर ओलियाँ शुरु की होती तो आज तक कम-से-कम १५०० से २००० आयंबिल पूर्ण हो गये होते! अब इस शरीर में न १०९ वीं ओली करने की क्षमता है और न ही वर्धमान तप का पाया डालने की।

गुरुदेव !

आप गुणलोभी तो थे ही, पर तपस्यालोभी भी थे। आप आराधना के लोभी तो थे ही, पर कर्मनिर्जरा में भी आपके लोभ का कोई अन्त नहीं था। ऐसे लोभ और लोभांधता, क्या आप हमें नहीं दे सकते गुरुदेव ?

गुरुदेव कहते हैं...

सुख-संपत्ति में पुण्य की सहायता का कई बार अनुभव किया। आपत्ति में देव-गुरु-धर्म की सहायता का क्या कभी अनुभव किया ?

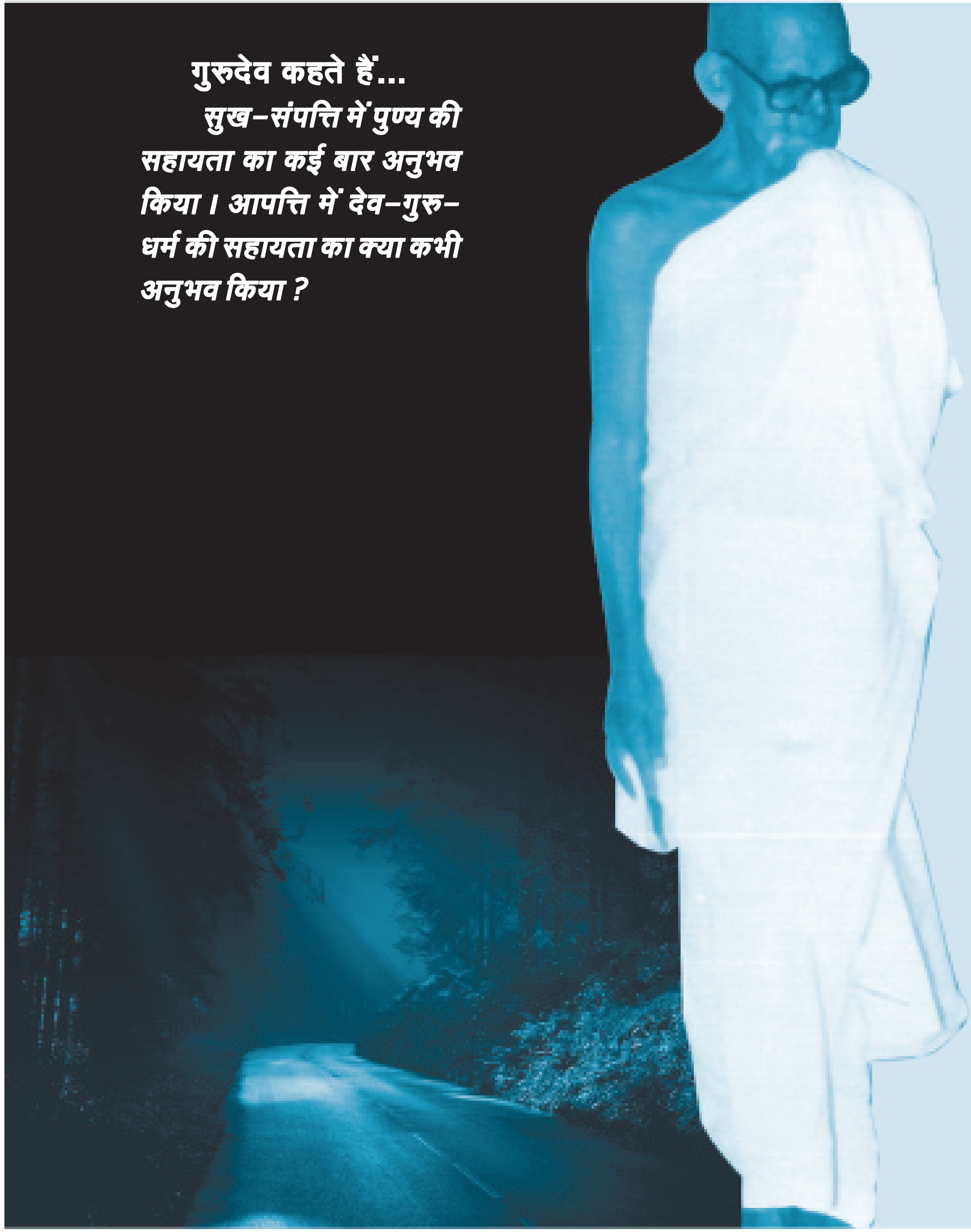

सूरत अठवागेट के उपाश्रय में गुरुदेव, रात को मैं आपके पास बैठा था। आपकी तबीयत कुछ नरम थी। आहार की अरुचि, निद्रा में विक्षेप, ये तकलीफें तो थीं ही, परन्तु चिंताजनक तकलीफ यह थी कि आपके शरीर पर लकवे का सामान्य हमला हो चुका था।

''गुरुदेव, एक विनती है।''

''बोलो''

''आज बम्बई से आए डॉ. बंसल एक बात विशेषरुप से कहकर गये हैं।''

''क्या ?''

''आपके गुरुदेव को खड़े खड़े प्रतिक्रमण मत करने देना। यदि संतुलन गँवा बैठे और गिर पड़े तो ब्रेन हेमरेज हो जायेगा अथवा हार्ट-अटेक आ जाएगा या फिर लकवे का इससे अधिक बड़ा हमला हो जायेगा।''

''मतलब ? तुम कहना क्या चाहते हो ?''

''अब आप बैठे-बैठे ही प्रतिक्रमण कीजिए।''

''देखो रत्नसुंदर, तुम्हें मेरे इर्द-गिर्द दो-तीन साधुओं को खड़े करना हो तो कर देना, लेकिन प्रतिक्रमण मुझसे बैठे-बैठे तो कतई नहीं होगा !''

गुरुदेव!

शरीर को सहलाने की बात तो कभी आपके दिमाग में आती ही नहीं थी, पर शरीर को संभालने का समय आया तब भी आपने प्रभु की आज्ञा का परिपालन करना ही उचित समझा। आपकी इस नि:स्पृहता को हमारे अनन्त-अनन्त वंदन !

गुरुदेव कहते हैं...

मन जब तक इष्ट-अनिष्ट, राग-द्वेष और हर्ष-शोक में जकड़ा हुआ रहता है, इन्हीं में लगा हुआ रहता है, तब तक आत्मा को ज्ञानदृष्टि, तत्वदृष्टि तथा शुभध्यान की प्राप्ति नहीं हो सकती।

वास्तव में शुभध्यान का स्वामी बनना हो तो इष्ट-अनिष्ट जनित हर्ष-शोक से बाहर निकल जाओ।

सूरत-ॐकारसूरि आराधना भवन का स्थान! रात के लगभग दो बजे का समय, और गुरुदेव! आपने मेरे पास एक मुनिवर को भेजा। मैं गहरी नींद में सोया था। मुनिवर ने मुझे उठाकर बस यही कहा-

''गुरुदेव बुला रहे हैं।''

मैं स्तब्ध रह गया। मन में चिन्ता की एक लहर-सी दौड़ गई। ''स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ तो नहीं है? समुदाय का कोई गंभीर प्रश्न तो खड़ा नहीं हुआ है? मुझे कुछ कहना चाहते होंगे?'' ऐसी अनेक प्रकार की शंका-कुशंकाएँ करते-करते मैं नीचे आया। आपके कमरे में प्रवेश किया। आपके पास बैठा, और गुरुदेव, आपने बात शुरु की-

''रत्नसुंदर! आवश्यक क्रिया के सूत्र कितने गंभीर रहस्यों से भरे पड़े हैं! सूत्र का उच्चारण करने के साथ मन यदि उसके अर्थ चिंतन में डूब जाए तो आत्मा अनंत अनंत अशुभकर्मों की होली जलाने में सफल हो सकती है! प्रश्न मेरे मन में यह उठता है कि साधु आवश्यक क्रियाएँ इस तरह करते होंगे या फिर बेमन से करते होंगे? तुम प्रतिदिन साधु-साध्वियों को वाचना देते हो ना? उस वाचना में इस विषय पर थोड़ा जोर देते जाओ। यही बताने के लिए तुम्हें अभी जगाया है!''

गुरुदेव!

रात के दो बजे हमारे लिए ऐसी चिन्ता से आप व्यथित? सच कहूँ? मुझे हमेशा यह महसूस होता है कि हम साधु भले ही पाँचवे आरे के हैं, पर हमें आप तो चौथे आरे के ही मिल गये हैं!

गुरुदेव कहते हैं...

संसार में एक भी वस्तु ऐसी नहीं है जिसके प्रति स्नेह करने के बाद कभी अरुचि का भाव पैदा न हुआ हो ! पत्नी भले ही रुप के अँबार जैसी मिली हो या करोड़ों का हीरा हाथ की अंगुली में हो, पर क्या उसके प्रति राग अखण्डित रहता है ? उसके प्रति भी कभी घृणा पैदा होती है या नहीं ?

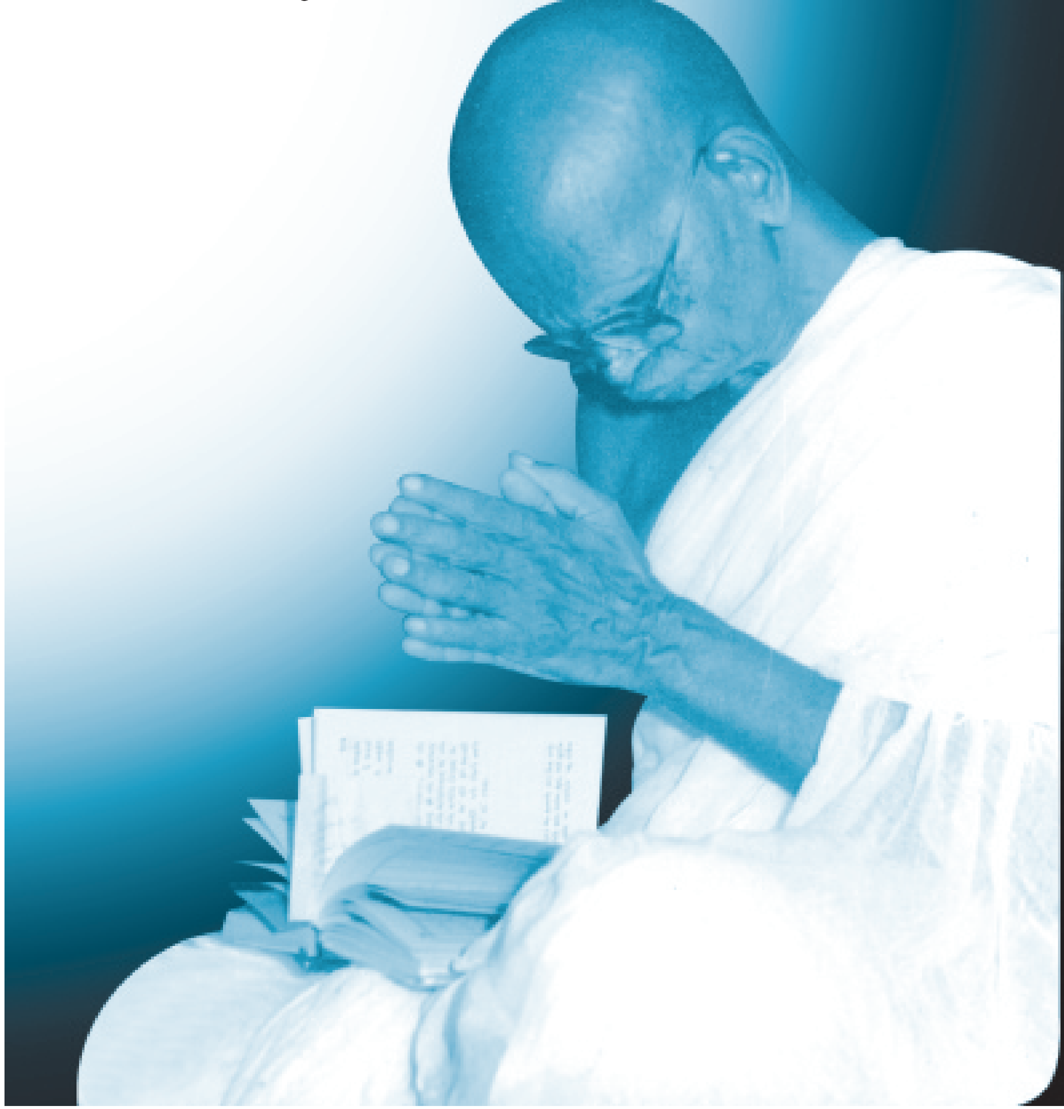

सूरत-ॐकारसूरि आराधना भवन में मैं मेरे आसन पर बैठा था और गुरुदेव, यह संदेशा मिला-

''गुरुदेव बुला रहे हैं।''

मैं तुरन्त खड़ा होकर आप जहाँ विराजमान थे उस कमरे के द्वार तक पहुँच तो गया, पर वहाँ मुझे शासनप्रभावक, पूज्यपाद पंन्यास श्री चन्द्रशेखरविजयजी महाराज भी मिल गये और आचार्य (उस वक्त पंन्यास) श्री हेमरत्नसूरि भी मिल गये।

''क्यों अभी ?''

''गुरुदेव ने बुलाया है।''

हम तीनों भीतर आये। ''दरवाजा बंद करो।'' गुरुदेव, आप बस इतना ही बोले और हम तीनों को लगा कि आज निश्चित् ही अपनी अच्छी-खासी धुलाई होने वाली है। तभी आपने बात शुरु की, ''देखो, तुम तीनों प्रवचन तो अच्छा ही करते हो पर प्रवचनों में बार-बार आगमग्रंथ तथा प्रकरणों के नाम के साथ उनकी शास्त्रपंक्तियाँ भी बोलते जाओ। ऐसा करने से श्रोताओं के मन पर गहरा असर होगा। शास्त्रों और शास्त्रकार परमर्षियों के प्रति उनके मन में आदरभाव पैदा हो जाए, यह भी प्रवचन की छोटी-मोटी फलश्रुति नहीं है।''

गुरुदेव !

''शास्त्रों को प्रधानता देने से वीतराग को ही प्रधानता दी जाती है।'' यह बात आपके मन में कितनी दृढ़रुप से बैठी है, यह प्रतीति हम तीनों को उसी समय हो गई थी।

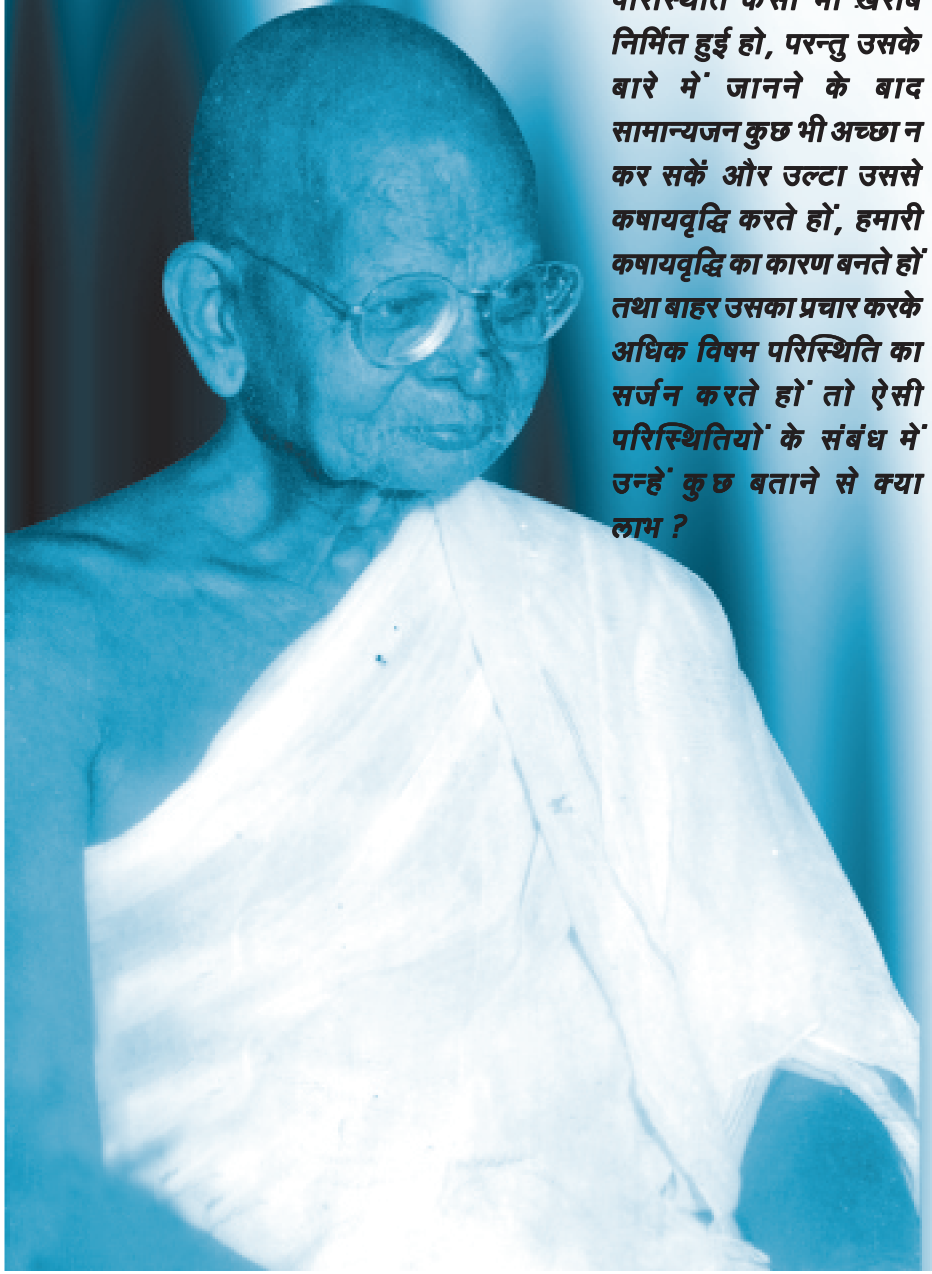

गुरुदेव कहते हैं...

हमारे जीवन में परिस्थिति कैसी भी ख़राब निर्मित हुई हो, परन्तु उसके बारे में जानने के बाद सामान्यजन कुछ भी अच्छा न कर सकें और उल्टा उससे कषायवृद्धि करते हों, हमारी कषायवृद्धि का कारण बनते हों तथा बाहर उसका प्रचार करके अधिक विषम परिस्थिति का सर्जन करते हों तो ऐसी परिस्थितियों के संबंध में उन्हें कुछ बताने से क्या लाभ ?

''पिछले कुछ दिनों से गुरुदेव, आपने अपना व्यवहार कुछ बदल लिया है, ऐसा नज़र आ रहा है। पहले तो गोचरी ग्रहण करने के बाद तुरन्त ही खड़े होकर आप अपने आसन पर पहुँच जाते थे और सूरिमंत्र के जाप में बैठ जाते थे। लेकिन, अभी आप गोचरी के बाद भी गोचरी मांडली में ही बैठे रहते हैं और वहीं पन्ने मँगवाकर जिनवचनों की अनुप्रेक्षा लिखते रहते हैं। जब तक गोचरी ग्रहण कर सभी साधु खड़े नहीं हो जाते तब तक आप वहीं बैठे रहते हैं। इसका कारण क्या है गुरुदेव ?''

संध्या के समय वन्दन करने के बाद मैंने आपसे नम्रभाव से यह पूछा था। आपका जवाब यह था–

''रत्नसुंदर! अपनी गोचरी मांडली संयमियों की है, वह पिकनिक रुप तो कभी नहीं बननी चाहिए ना ? तुम देख ही रहे हो कि गोचरी मांडली में जब तक मैं उपस्थित रहता हूँ तब तक कितनी शांति रहती है ? अलबत्ता, सभी साधु शालीन हैं, फिर भी मेरी उपस्थिति यदि इतनी प्रभावशाली बनी रहती हो तो यह अच्छा ही है ना ! सबकी गोचरी जल्दी हो जाए निरर्थक बातचीत न हो, संयम की मस्ती का अनुभव करने के लिए भी यह ज़रुरी है।''

गुरुदेव !

आपकी हम सभी के हित की कांक्षा को स्मरणांजलि देने के लिए न हमारे पास शब्दों का वैभव है और न ही संवेदनाओं की अभिव्यक्ति ! आप हमारे लिए क्या नहीं थे, यह प्रश्न है।

गुरुदेव कहते हैं...

क्षत्रिय की तलवार का उपयोग क्षीण-कमज़ोर प्राणियों के वध के लिए नहीं होता। इसी प्रकार, धर्मात्मा की बुद्धि का उपयोग क्षुद्र विचारों और दूसरों पर वर्चस्व जमाने के लिए नहीं होता।

गुरुदेव, आपका स्वास्थ्य कुछ ज्यादा ही नरम था। पैरों में लकवे का सामान्य असर था । आहार की कोई रुचि नहीं थी। शरीर में कमज़ोरी भी थी। सोने के बाद आप अपने आप बैठ सकें ऐसी कोई संभावना तो थी ही नहीं, परन्तु हम साधुओं को भी आपको बिठाने में बड़ी परेशानी होती थी। इन तकलीफों में कुछ आराम पाने के लिए डॉक्टर ने आपको पलंग पर सुलाने का विशेष अनुरोध किया था।

अस्पताल से पलंग मँगवाकर रख दिया और वह भी हैंडलवाला, जिससे आपको बैठने में कोई तकलीफ न हो। आपकी बिल्कुल अनिच्छा के बावजूद आपको पलंग पर सुलाने में हमें सफलता तो मिली, लेकिन परेशानी तो तब हुई जब हमने हेंडल का उपयोग करके आपको बिठाया। आपने पूछा, ''मैं बैठा किस तरह ?''

पलंग से हेंडल निकालकर, गुरुदेव, आपको दिखाया और आपने तुरन्त पूछा, ''इस हेंडल को पलंग में डालो तब पलंग के इस पोले हिस्से को पूँजना कैसे संभव है ? नहीं ! इस पलंग पर मैं हर्गिज़ नहीं सोऊँगा।'' और आपने पलंग छोड़कर अपनी पाट का ही उपयोग किया !

गुरुदेव !

''यतना ही संयमजीवन का प्राण है।'' इस शास्त्रपंक्ति को आपने जीवन में न जाने कितनी बार दोहराया होगा कि ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी आपको यतना याद आ गई। यतना के प्रति ऐसे प्रेम का यह दान आप हमें नहीं देंगे ?

गुरुदेव कहते हैं...

जैसे ताँबे, पीतल पर कलाई चढ़ाने के बाद उस पर ज़ंग नहीं लगता वैसे ही, आत्मा पर वीतराग परमात्मा के धर्म का रंग चढ़ने के बाद उस पर अनावश्यक रागादि पापों का ज़ंग नहीं लगता।

स्वास्थ्य, गुरुदेव, आपका अब अच्छा ख़ासा बिगड़ गया था। विशेषकर, खाने के प्रति अरुचि, कमजोरी और अनिद्रा–ये तीनों तकलीफें तो रोज की हो चुकी थीं। फिर भी आप मन से मस्त, प्रसन्न एवं स्वस्थ थे। इस स्थिति में भी हम सबके कल्याण की चिन्ता करते थे। प्रात:काल वंदन हेतु एकत्रित होने वाले हम सबको छोटी–सी हितशिक्षा भी देते ही थे।

पर, बाकी समय आपके कक्ष का द्वार लगभग बंद रहता था जो आपके स्वभाव के विपरीत था। मुझे इस बात से आश्चर्य होता था। एक दिन दोपहर में मैं आपके पास बैठा था और आपने स्वयं ही बात निकाली–

''रत्नसुंदर, मुझे लगता है कि आगम एवं शास्त्रों के वाचन में मैं अब पूर्णरुप से डूब जाऊँ। जीवनभर सबको बहुत संभाला। ज़िम्मेदारी थी इसलिए श्रावकों के साथ परिचय भी किये, लेकिन अब लगता है कि बस, बहुत हुआ। तुम साधुओं को मेरे पास भेजा करो। 'योगदृष्टि समुच्चय' पर मैं उन सबको अध्ययन कराना चाहता हूँ। इसके अलावा भी किसी को और किसी ग्रंथ का अध्ययन करना हो तो भले ही नि:संकोच आ जाए मेरे पास। पर सुनो, अब अध्ययन–अध्यापन के अलावा और किसी भी विषय में मुझे रुचि नहीं है।''

गुरुदेव !

जीवनभर आपने वैसे भी अन्य किसी निरर्थक विषय में कहाँ रुचि रखी है ? आपकी रुचि अरिहन्त, अंतर्मुखता, अप्रमत्तता, अहोभाव, अध्ययन, अध्यापन में ही तो रही है ना ?

गुरुदेव कहते हैं...

कोई हमारा भला करे या न करे, हमें सबका भला करना चाहिए । अच्छा कोई भी कार्य कभी व्यर्थ नहीं जाता । वह पुण्य के खाते में जमा होता है, वह परलोक की पूँजी में जमा होता है । अत: दुनिया जाने या न जाने, अच्छे कार्य विपुल प्रमाण में करते ही जाओ ।

सोने के लिए बच्चे को एक ओर मुलायम गद्दी मिले और दूसरी ओर माँ की गोद। बच्चा गद्दी को छोड़कर गोद को ही पसंद करेगा। कारण ? गद्दी में केवल सुविधा है, जबकि माँ की गोद में क्या नहीं है, यह प्रश्न है ।

गुरुदेव !

आपकी गोद की चाह में मैंने कभी ग़लती नहीं की, इसे मैं अपने जीवन का एकमात्र श्रेष्ठतम सौभाग्य मानता हूँ। मुमुक्षु अवस्था में मैं था तब भी इस गोद में लोटने का आनन्द मैंने लूटा और वर्षों के संयमपर्याय के बाद भी गोद में लोटने की अनुमति देने की आपकी उदारता का भरपूर फायदा उठाने में भी मैं सदैव आगे ही रहा हूँ।

आज मैं दावे से यह कह सकता हूँ कि संयमजीवन के इतने वर्षों में, गोद में लोटने के इस सौभाग्य के अलावा अन्य किसी भी वस्तु ने मुझे आकर्षित नहीं किया, मुझे लोभान्वित नहीं किया।

गुरुदेव !

मुक्ति न मिले तब तक, प्रत्येक जन्म में मुझे आपकी गोद में लोटने का सौभाग्य प्राप्त होता रहे, प्रभु से मैं प्रतिदिन यही याचना करता हूँ।

मेरी इस याचना से आपको कोई ऐतराज़ तो नहीं है ना गुरुदेव ?

गुरुदेव कहते हैं...

इस दुनिया में सुविधा जितनी अधिक मिलती है आत्मा उतनी ही अधिक मलीन, परतंत्र और पराधीन बनती है। उसी प्रकार स्वार्थ और मोह में फँसे दुनिया के जीवों को जो समर्पित होता है उससे भी दीनता, पराधीनता और पाप की वृद्धि होती है। दुनिया को समर्पण करने में आत्मा की अवनति है। गुरु को समर्पण करने में आत्मा की आबाद उन्नति है।

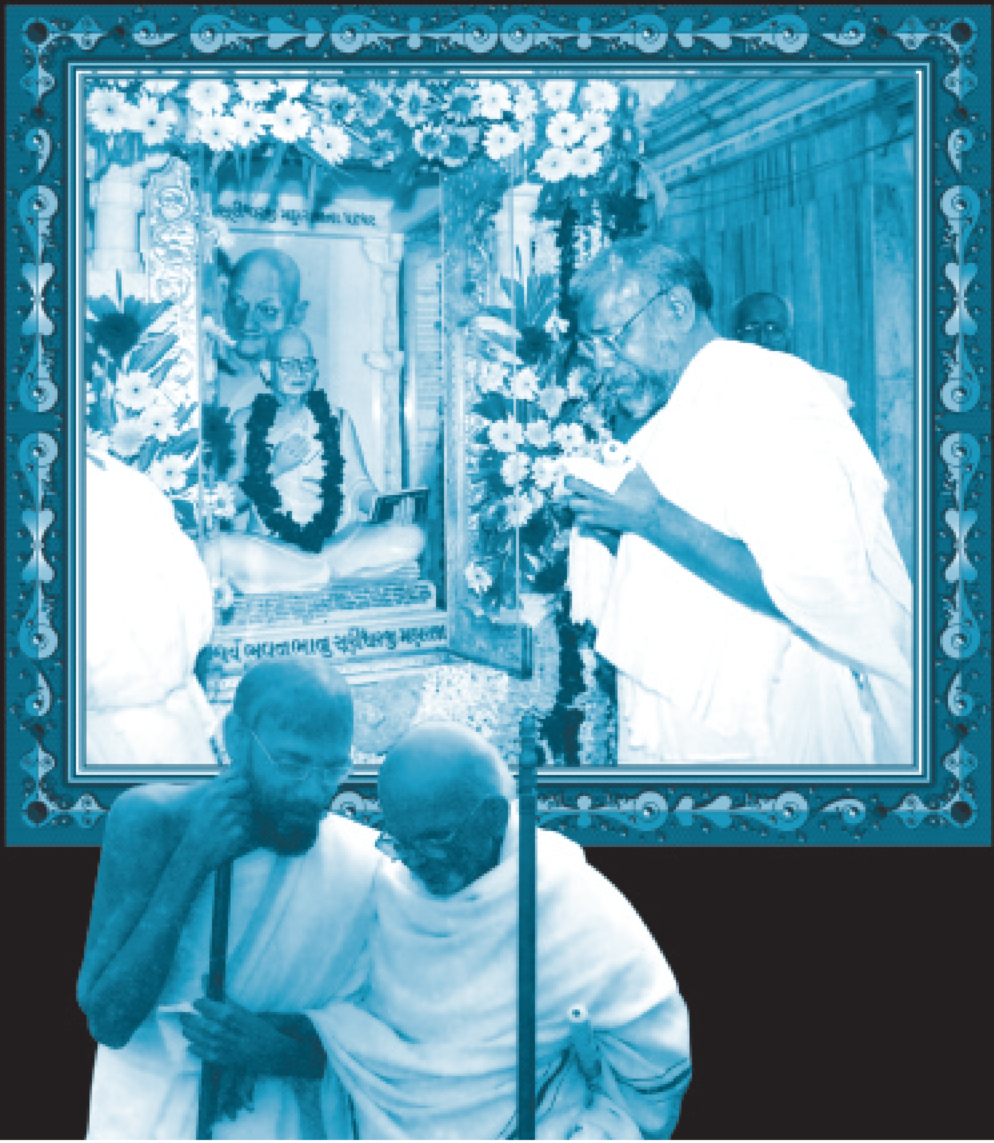

प्राणों से प्यारे गुरुदेव !

हाथ पकड़कर संसार के विषय-कषाय और आरंभ-समारंभ के कीचड़ से मुझे बाहर निकालने के बाद भी आपने मेरा हाथ नहीं छोड़ा, बल्कि संयमजीवन का दान करके उस जीवन में भी मैं कहीं ग़लती न कर बैठूँ इस हेतु जीवनभर के लिए उसे थामे रखा। बस, इस हाथ के सहारे ही आज मैं संयमजीवन के पालन में अनूठी प्रसन्नता महसूस कर रहा हूँ।

आज इस धरती पर जब आप साक्षात् विद्यमान नहीं हैं तब आपश्री के समक्ष मैं यही याचना करता हूँ कि आपश्री ने मेरा हाथ यदि हमेशा थामे रखा है तो जीवन के अंतिम पल तक इस हृदय में मैं आपको जकड़कर ही रखूँ ऐसी सद्बुद्धि मुझे दीजियेगा। आपश्री ने संयमजीवन को विशुद्ध रखने के जो श्रेष्ठतम आदर्श एवं आलंबन मुझे दिये, उन आदर्शों और आलंबनों को मैं जीवन के प्रत्येक क्षण में स्मृतिपथ में अक्षुण्ण रख सकूँ, ऐसी कुशाग्र स्मृति मुझे दीजियेगा। इस विषय में मैं सफल बनूँ ऐसी शक्ति भी आपश्री ही मुझमें पैदा कीजियेगा। इससे ज्यादा आपश्री से मैं दूसरा कुछ माँगना भी नहीं चाहता... दूसरा कुछ प्राप्त करना भी नहीं चाहता।

इतनी करुणा मुझ पर बरसाना गुरुदेव !

आपका ही....
रत्नसुंदर